पढ़ें और सीखें योजना

हमारा गुजरात

वर्षादास

विभागीय सहयोग
सुरेश पांडेय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

जुलाई 1991
आषाढ़ 1913

P.D. 15 T—SD

प्रकाशन सहयोग

सी.एन.राव : अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी	: मुख्य संपादक	**यू. प्रभाकर राव**	: मुख्य उत्पादन अधिकारी
आशीष सिन्हा	: संपादक	**डी.साई प्रसाद**	: उत्पादन अधिकारी
शर्मा दत्त	: सहायक संपादक	**सुबोध श्रीवास्तव**	: उत्पादन सहायक

मूल्य : रु. 12.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा ग्राफिक कम्पोज़र्स द्वारा फोटो कम्पोज़ होकर सर्ज एसोसिएट्स (प्रा.) लिमिटेड, सी-454, सेक्टर-10, नोएडा द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पचीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्त्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बालकों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत, "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएँगी। हम आशा करते हैं कि 1991 के अंत तक हिन्दी में हम निम्नलिखित विषयों पर 50 पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें
(ख) कथा साहित्य

(ग) जीवनियाँ

(घ)देश-विदेश परिचय

(ङ) सांस्कृतिक विषय

(च) वैज्ञानिक विषय

(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली, और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक "हमारा गुजरात" के लेखन के लिए डा. (श्रीमती) वर्षा दास ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी में "पढ़ें और सीखें" पुस्तकमाला की यह योजना प्रो. अनिल विद्यालंकार (अवकाश प्राप्त) के मार्ग-दर्शन में चल रही थी और अब प्रो.अर्जुन देव इसे दिशा दे रहे हैं। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा. रामजन्म शर्मा, डा. सुरेश पांडेय, डा. हीरालाल बाछोतिया और डा. अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्गदर्शन राजस्थान विश्व विद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डा. रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं और इन पुस्तकों के लेखन में हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डा. रामदुलार शुक्ल सहयोग दे रहे हैं। योजना के संचालन में डा. बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं डा. रामचरण मेहरोत्रा को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सकें।

के. गोपालन
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आतमा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी

विषय क्रम

	प्राक्कथन	iii
1.	चलिए सैर करने	1
2.	वलसाड़	5
3.	सूरत	8
4.	डांग	13
5.	भरूच और खेड़ा	15
6.	वडोदरा	18
7.	पंचमहल	23
8.	उत्तर गुजरात	27
9.	अहमदाबाद	30
10.	अहमदाबाद के आसपास	39
11.	सौराष्ट्र की ओर	43
12.	भावनगर	45
13.	पालीताणा	47
14.	राजकोट	51
15.	जूनागढ़	54
16.	नरसिंह मेहता	57

17.	जूनागढ़ के आसपास	59
18.	सोमनाथ	61
19.	पोरबंदर	63
20.	द्वारका	65
21.	जामनगर	69
22.	कच्छ	72
23.	जेसल-तोरल	78
24.	वापसी	82

1

चलिए सैर करने

अंधेरी रात थी। विशाल जंगल था। आकाश तारों से जगमगा रहा था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। एक जीप में एक परिवार जंगल के पास के रास्ते से गुजर रहा था। अचानक खट-सी आवाज़ हुई और जीप रुक गई।

गीर के जंगल में शेर

चालक बोला: "अब क्या होगा? बीच जंगल में यह क्या मुसीबत आ पड़ी?" नीचे उतर कर उसने जीप का बोनट खोला। इधर गाड़ी में दो बच्चे और उनके माता-पिता थे। गीर के मशहूर जंगल को छूते हुए वे एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहे थे। यह कोई छोटा जंगल नहीं था। 1,500 वर्ग किलोमीटर में फैले हुए इस जंगल में कई प्रकार के प्राणी रहते हैं। यहाँ विश्वविख्यात सिह, नीलगाय, हिरण, चीतल, सांबर, चौसिगा और चिन्कारा हैं, जंगली सूअर तथा चीते और रीछ भी हैं।

जंगल के कारण जीव-जन्तुओं की छोटी-मोटी आवाज़ें हो रही थीं। जीप में सभी चुपचाप बैठे थे कि अचानक सिह की दहाड़ सुनाई दी। सभी के दिल की धड़कन मानों पलभर के लिए रुक गई। चालक वहीं का रहने वाला था। वह डरा नहीं। जीप में बाबुभाई और रमाबहन तथा उनके बच्चे बाबुल और नीतु बैठे थे। उनका हौसला बढ़ाने के लिए वह बोला: "सिह तो पशुओं का राजा होता है। उसे छेडो नहीं तो वह कुछ नहीं करता। आप घबराइए मत और यह लीजिए, गाड़ी भी ठीक हो गई।"

डर के मारे सिकुड़कर बैठे हुए बाबुभाई और रमाबहन कुछ स्वाभाविक हुए। बाबुल और नीतु तो अपने माता-पिता के सीने में सिर छुपाकर बैठ गए थे। जीप के चलते ही दोनों ने धीरे से सिर उठाया और एक-दूसरे को देखकर मुस्कराए। अब डर गायब हो गया था। दोनों ही सोच रहे थे कि स्कूल जाकर मित्रों से इस जंगल की और सिह की बातें करेंगे।

बाबुभाई ने बच्चों को बताया कि सारी दुनिया में केवल दो ही देशों में सिह हैं। एक अफ्रीका के जंगलों में और दूसरा भारत के इस गीर के जंगल में। भारतीय सिंह 2.75 मीटर लंबा होता है। अफ्रीका का सिह उससे 30 से मी. अधिक लंबा होता है। इस समय गीर के जंगल में सिह, सिहनी और उनके बच्चों को मिलाकर कुल आबादी लगभग 200 की है। वहाँ शिकार करना बिलकुल मना है। सिह तो क्या, किसी भी प्राणी को नहीं मार सकते हैं।

बाबुल तो ये सब सुनकर अपने दोस्तों को सुनाने के लिए अधीर हो गया। दोस्तों को तो बहुत-सी बातें बतानी थीं। बाबुल, नीतु और उनके माता-पिता बंबई में रहते थे दीपावली की छुट्टियों में पूरा परिवार जीप में बैठकर गुजरात की सैर करने चला था। बंबई महाराष्ट्र की राजधानी है। उससे लगा हुआ उत्तर में गुजरात राज्य है। सन् 1960 की 1 मई के पहले तो गुजरात बंबई राज्य का ही हिस्सा था।

बाद में वह अलग राज्य बना। गुजरात पश्चिम भारत में है। उसकी दाँई ओर मध्यप्रदेश है और बाँईं ओर अरब सागर है। दक्षिण में महाराष्ट्र है और उत्तर की सीमा पर एक तरफ राजस्थान है और उसी से जुड़ा हुआ पाकिस्तान है।

गुजरात का समुद्र किनारा बहुत ही बड़ा, लगभग 1600 किलोमीटर लंबा है। उस पर कुल मिलाकर छोटे-बड़े 40 बंदरगाह हैं। प्राचीन काल से यहाँ विदेशों से जहाज आया करते हैं और यहाँ से विदेशों में जाते रहते हैं। विदेशियों के आने से हमें काफी लाभ हुए हैं। व्यापार से होने वाले लाभ तो हैं ही, लेकिन एक-दूसरे के बारे में जानने का भी यह अच्छा अवसर होता है। दोनो देशों के विकास के लिए यह आवश्यक है। परंतु यदि हम सतर्क न हों तो विदेशियों के आगमन से नुकसान भी हो सकता है। भारत में हालैंड से डच, फ्रांस से फ्रांसिसी, पुर्तगाल से पुर्तगाली और इंग्लैंड से अंग्रेज आए। सभी ने व्यापार करना चाहा और फिर हम पर ही सवार हो गये। यह तो ऊँट और अरब की कहानी जैसा हुआ। ऊँट ने अरब से केवल अपना सिर छुपाने की जगह माँगी थी, फिर धीरे-धीरे पैर घुसा दिए, फिर शरीर और फिर वह पूरा का पूरा अरब के तंबू में घुस गया। अरब बेचारा बाहर। इन विदेशियों ने भी हमारे साथ कुछ ऐसा ही किया। रोचक बात तो यह है कि दक्षिण गुजरात का सूरत शहर सभी विदेशियों को बड़ा पसंद आ गया। मुगलों की नजर उस पर इसलिए थी कि वे सूरत बंदरगाह से हज करने मक्का जाया करते थे। डच, फ्रांसिसी और पुर्तगालियों ने भी यहाँ अपनी कोठियाँ बना लीं। सन् 1612 में अंग्रेजों ने सूरत में व्यापार करने की सुविधाएँ माँगीं और मुगल बादशाह ने मंजूरी दे दी। परिणाम यह हुआ कि सन् 1842 में जब अंतिम नवाब की मृत्यु हुई तब सूरत पूरी तरह से अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

इस प्रकार भारत को गुलामी की ओर ले जाने का रास्ता गुजरात में खुल गया। यह सत्रहवी शताब्दी की बात है। इसी गुजरात के पोरबंदर नामक शहर में उन्नीसवीं सदी में एक व्यक्ति का जन्म हुआ, जिसने आज़ादी के आंदोलन का नेतृत्व किया। यह व्यक्ति थे मोहनदास करमचंद गांधी, जिनको हम महात्मा गांधी के नाम से जानते हैं। काफी संघर्ष के बाद आखिर सन् 1947 में भारत आजाद हो ही गया। इस प्रकार देश की पराधीनता के इतिहास में जैसे गुजरात का नाम आता है, वैसे स्वाधीनता संग्राम के बयान में भी गुजरात आगे रहा है। जिस सूरत पर अंग्रेजों ने कब्ज़ा कर लिया था उसी के आसपास का प्रदेश गांधी जी के सत्याग्रहों से विश्वविख्यात हो गया।

प्राचीन काल से आज तक गुजरात ने कई रंग देखे हैं। यहाँ कला और संस्कृति पनपे हैं। विज्ञान और यांत्रिकी का भी विकास हुआ है। समृद्ध लोकसाहित्य एवं लोककलाएँ हैं। आधुनिकतम विश्वविद्यालय हैं। कृषि उद्योग में प्रगति की हैं। उपग्रह संचार केन्द्र भी यहीं पर हैं। इस प्रकार, प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति का सुंदर मेल गुजरात में पाया जाता है। इसीलिए गुजरात की यात्रा बड़ी रोचक रहेगी।

तो फिर हम भी बाबुल-नीतु के साथ जीप में बैठकर पूरे गुजरात की सैर कर लेते हैं। लेकिन वे तो गीर के जंगल तक पहुँच गये हैं। आधे से भी ज्यादा गुजरात देख चुके हैं। हम भी वह सब देख लें जो उन्होंने देखा है और बाकी की यात्रा उनके साथ कर लें।

किसी नई जगह पर जाने से पहले उसके-बारे में थोड़ी बातें जान लेना जरूरी है। इससे वहाँ की विशेषताओं को पहचानने में सरलता हो जाती है।

गुजरात राज्य के मुख्य तीन हिस्से हैं: गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ। कहा जाता है कि पाँचवी शताब्दी में हूण लोगों के साथ आये हुए गुर्जर लोग इस प्रदेश में बसे थे इसलिए यह गुर्जर-राष्ट्र और फिर गुजरात कहलाया। सुराष्ट्र याने अच्छा राष्ट्र कहलाने पर गुजरात का दूसरा हिस्सा सौराष्ट्र कहलाया। सौराष्ट्र में एक ज़माने में काठी कोम का वर्चस्व था, तब उसे काठियाबाड़ कहते थे। यह नाम आज भी प्रचलित है। कच्छ का प्रदेश पाकिस्तान के सिंध से जुड़ा हुआ है लेकिन एक समय ऐसा था जब उसके चारों ओर पानी था, जिसके कारण वहाँ काफी नमी रहती थी। नमीवाले प्रदेश को कच्छ कहते हैं। इस प्रदेश का आकार ऐसा है कि वह पानी में तैरते हुए कछुए जैसा लगता है। संस्कृत में कछुए को कच्छप कहते हैं। हो सकता है कि उसी से यह प्रदेश कच्छ कहलाया।

हम बंबई से चल रहे हैं, इसलिए सबसे पहले आएगा गुजरात, फिर सौराष्ट्र और उसके बाद कच्छ। सारा गुजरात प्रशासन की सुविधा के लिए 19 ज़िलों में बंटा हुआ है। यहाँ लगभग 18,700 गाँव हैं और एक लाख से अधिक की आबादी वाले ग्यारह शहर हैं। बंबई की ओर से गुजरात में प्रवेश करते समय सबसे पहले वलसाड़, डांग और सूरत जिले आते हैं।

□□

2

वलसाड़

पूरे गुजरात में पक्की सड़कें जाल की तरह फैली हुई हैं। बसों का यातायात दिन-रात चलता रहता है। हम बंबई के अंतर्राज्यीय बस अड्डे से बस में बैठे हैं और तीन घंटे हुए नहीं कि हम गुजरात में आ गये। सड़क के दोनों ओर खेत तथा फलों के बगीचे लहलहाते दिखाई देते हैं। आम, चीकू, केले, संतरे, पपीते, अमरूद और भी कई प्रकार के फल यहाँ होते हैं। गन्ने के भी बड़े-बड़े खेत हैं। सारा वलसाड़ ज़िला बहुत ही हराभरा है। वलसाड़ के समुद्र किनारे पर तिथल और उभराट जैसे सुंदर नगर हैं। गरमी के दिनों में यहाँ दूर-दूर से लोग आते हैं। कभी-कभी तो सारी छुट्टियाँ यहाँ के विश्रामगृहों में बिता देते हैं। इसी जिले में सरोवर के किनारे उकाई नाम का नगर है। वहाँ देवी अम्बा के मंदिर के प्रागण में गरम पानी के झरने हैं। पानी में गंधक होने के कारण वह गरम होता है। उसमें औषधीय गुण भी होते हैं। त्वचा की कुछ बीमारियाँ इससे दूर हो जाती हैं। एक किवदंती के अनुसार भगवान रामचंद्र जी ने अपने तीर से यहाँ पानी निकाला था। यहाँ लोगों की भीड़ लगी रहती है।

पुर्तगालियों ने दमण नाम के एक शहर पर कब्जा किया था वह इसी जिले में हैं और इरान से भागे हुए लोग भी वलसाड़ जिले के संजाण बंदरगाह पर उतरे थे। इरान उन दिनों पर्स कहलाता था। सातवीं सदी में अरबों ने पर्स पर हमला किया था और वे विजयी भी हो गये थे। उन्हीं का हुक्म चलने लगा। जीत हो गई तो पर्स की प्रजा को इस्लाम धर्म स्वीकारने पर मजबूर करने लगे। उस समय इरान में पैगम्बर जरथुष्ट्र के दिये हुए धर्म का पालन हो रहा था। लोग पवित्र अग्नि की पूजा करते थे।

जब उन पर धर्म बदलने के लिए ज़ोर दिया गया तो बहुत से लोग खोरासान के पहाड़ों में छुप गये। इस तरह छुपकर रहना भी जब मुश्किल हो गया तो वे पवित्र अग्नि को साथ लेकर सात जहाजों का एक काफला बनाकर अपने अरब सागर के रास्ते से सौराष्ट्र के दीव बंदरगाह पर आये। कुछ वर्ष वहाँ बिताने के बाद उन्होंने दीव छोड़ दिया और वलसाड़ जिले के संजाण बंदरगाह पर कदम रखा। यह आठवीं शताब्दी की बात है। इस समय वहाँ जादव राणा नामके हिंदू राजा का शासन था।

पर्स के ये पारसी लोग राजा के पास गये और कहा: ''हमें अपने राज्य में आसरा दीजिए।'' इतनी बड़ी संख्या में आये हुए निराश्रितों के प्रति राजा को सहानुभूति हुई। लेकिन उनके राज्य में इतने सारे विदेशियों को रखने की जगह नहीं थी। अपनी प्रजा के साथ इनको रखने का एक ही तरीका था। राजा ने एक कटोरा दूध मंगवाया। उस में चीनी मिलाई। चीनी घुल गई। दूध की एक बूंद भी बाहर नहीं गिरी।

राजा यही समझाना चाहते थे कि दूध में जैसे चीनी घुल जाती है उसी तरह पर्स से आए हुए लोगों को वहाँ की प्रजा के साथ घुल मिल जाना होगा। इस संबंध में दो शर्तें भी रखी गईं। पहली शर्त यह थी कि पर्स की महिलाएँ गुजराती महिलाओं की तरह पूरा घाघरा पहनकर, उन्हीं की तरह साड़ी बाँधेंगी। और दूसरी शर्त यह थी कि उनको अपनी भाषा छोड़कर गुजराती भाषा अपनानी होगी। दोनों शर्तें सुनकर पारसी तो खुश हो गये। वे अपने धर्म की रक्षा करने के लिए अपने देश से भाग निकले थे। जादव राणा ने हिंदू धर्म अपनाने की शर्त नहीं रखी थी। अन्य दो शर्तें पारसियों को मंजूर थी। उन्होंने संजाण के पास उदवाड़ा गाँव में अपने साथ लाये हुए पवित्र अग्नि की स्थापना की। पारसियों का धर्मस्थान ''अगियारी'' कहलाता है। आज भी उदवाड़ा की अगियारी पारसियों का सब से बड़ा तीर्थस्थान माना जाता है। तब से पारसी गुजरात के गुजराती बन गये हैं, स्वदेश-प्रेमी, भारतवासी बन गये हैं।

अंग्रेजों को देश से हटाने के लिए जब स्वतंत्रता-आंदोलन छिड़ गया तब दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, सर दिनशा वाच्छा और भीकाजी कामा ने बहुत बड़ा योगदान दिया था। दादाभाई नौरोजी इन्डियन नेशनल कांग्रेस के स्थापकों में से एक थे। सन् 1906 के अधिवेशन में उनको अध्यक्ष चुना गया था। फिरोजशाह मेहता स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय हिस्सा ले रहे थे। उन्होंने बंबई में 'बोंबे क्रोनिकल' नाम का अखबार शुरू किया। दिनशा वाच्छा अठारह वर्षों तक इंडियन नेशनल कांग्रेस के सचिव रहे और सन् 1901 के अधिवेशन में अध्यक्ष भी चुने गये। **भीकाजी कामा पहली पारसी महिला थीं जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में प्राणपण से भाग**

लिया था। अंग्रेजों के खिलाफ वे इतनी उग्रता से लड़ रही थीं कि उनको भारत छोड़कर विदेश भाग जाना पड़ा। 18 अगस्त 1907 में उन्होंने लगभग 1000 जर्मन लोगों के सामने उन्हीं की भाषा में भारत की स्वतंत्रता के लिए बड़ा जोशीला भाषण दिया। भाषण के बाद उन्होंने झंडा फहराया, जिसमें मामूली-सा परिवर्तन करके आज हमने उसे अपने राष्ट्रीय ध्वज के रूप में अपना लिया है। आज इसी पारसी कौम के जमशेदजी टाटा सफल उद्योगपति, होमी भाभा महान वैज्ञानिक और जुबिन मेहता विख्यात संगीतकार के रूप में सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। पारसी कवि अरदेशर खबरदार का काव्य

"गुणवंती गुजरात। अमारी गुणवंती गुजरात।
नमिये, नमिये मात। अमारी गुणवंती गुजरात।"

कवि की मृत्यु के बत्तीस साल बाद भी ये पंक्तियाँ गुजरात में गूँज रही हैं। पारसी लोग गुजरातियों के साथ इतने घुलमिल गये लेकिन उनके पर्व-त्यौहार खास उन्हीं के हैं, जैसे कि नये साल का दिन पपेती कहलाता है। इस दिन वे अगियारी में जाकर अग्नि में चंदन की लकड़ियाँ समर्पित करते हैं। धानसाक इत्यादि विशिष्ट भोजन बनाते हैं। मित्रों और रिश्तेदारों का अभिवादन करते हैं।

□□

3

सूरत

वलसाड़ के बाद आ गया सूरत ज़िला। सूरत का नाम लेते ही मुँह में पानी आ जाता है। गुजराती में एक कहावत है कि "सूरतनुं जमण अने काशीनुं मरण" याने बढ़िया से बढ़िया भोजन खाना है तो सूरत जाइए और सीधे स्वर्ग पहुँचाने वाली मृत्यु चाहिए तो काशी जाइए। सूरत की शान का तो जवाब नहीं। जब खाने-पीने की बात चली है तो पहले उसे ही देख लें।

जैसे हमारी बस सूरत के बस-स्टैंड पर रुकी तो वहाँ घारी और नानखताई बेचने वाले दौड़ आये। घारी सूरत की बड़ी मशहूर मिठाई है। ऊपर घी की मोटी परत होती है और अंदर खोया व मेवा भरा रहता है। नानखताई बिस्कुट भी यहाँ की विशेषता है। दिवाली के दिनों में और एक चीज़ मिलती है, जिसे "पोंक" कहते हैं। खेतों में ज्वार के दाने लग गये हैं पर वह अभी पकी नहीं है। उनको भूना जाता है। ज्वार के दाने जो पोंक कहलाते हैं, उनके साथ लहसुन की चटनी, खूब महीन भुजिया और मट्ठा..... अहाहा..... मज़ा आ गया। इन दिनों हरी सब्जियाँ भी बहुत अच्छी मिलती हैं। गुजराती लोग कई तरह की सब्जियों को एक मिट्टी के घड़े में रखकर, घड़े का मुँह घास से बंद करके उसे ज़मीन में गड्ढा खोदकर रख देते हैं। फिर उसके चारों ओर लकड़ी से आग जलाते हैं। इस प्रकार बनाई गई सब्जी को उंधियु कहते हैं। उंधियु पूरे गुजरात में बनाया जाता है, लेकिन उसके लिए विशेष प्रकार की सेम चाहिए जो सूरत के पास कतार गाँव में ही उगती है। रुपहले रंग की यह सेम रेशम जैसी चिकनी होती है उसके अंदर तीन दानें होते हैं। किसी भी सेम में आपको न दो

दाने मिलेंगे, न चार। है न कुदरत का कमाल। इस सेम की इतनी महिमा है कि भारत के किसी भी कोने में रहते हुए गुजराती व्यक्ति को यदि सर्दी के मौसम में दक्षिण गुजरात से गुज़रना हो तो वह इसे साथ ले ही जाएगा।

सूरत का और एक आकर्षण है मकरसंक्रांति का त्यौहार। 14 जनवरी को जब सूर्य उत्तरायण में जाता है तब सारे गुजरात में पतंगें उड़ाई जातीं हैं। इस त्यौहार को गुजरात में "उतराण" कहते हैं। छोटे-बड़े सब घर की छतों पर चढ़कर, खुले मैदानों में जाकर पतंगें उड़ाते हैं। इसकी तैयारी कई दिन पहले शुरू हो जाती है। शीशे का बारीक चूरा बनाकर "मांजा" तैयार किया जाता है, जिससे दूसरों की पतंग को काटा जा सके। अलग-अलग मोहल्लों के बीच में स्पर्धा होती है। सारा आकाश पतंगों से छा जाता है।

मूल सूरत के रहने वाले यदि नौकरी या किसी अन्य कारण से सूरत के बाहर हों तो उतराण के दिन सूरत पहुँच ही जाएँगे।

सूरत के लोग शौकीन है। अच्छा पहनना, अच्छा खाना, मौज करना। सूरत का इतिहास देखें तो मालूम होता है कि गोपी नामके ब्राह्मण ने यह शहर बसाया था। लगभग चौदहवीं शताब्दी से सूरत का विदेशों से व्यापार होता था।

सूरत समुद्र के किनारे नहीं है। तापी नदी के किनारे बसा हुआ यह शहर अरबी समुद्र से केवल 20 किलोमीटर दूर है और नदी के कारण समुद्र से जुड़ा हुआ है। इसी लिए तो यहाँ विदेशी आते रहे, आक्रमण भी करते रहे। पुर्तगालियों ने इस पर तीन बार हमला किया था और जला भी डाला था। ऐसे हमलों से अहमदाबाद के राजा को बहुत गुस्सा आया। सूरत शहर की रक्षा के लिए उन्होंने शहर के चारों ओर किला बनवाने का आदेश दिया और तुर्कस्तान के विशेषज्ञों को बुलाया। सन् 1546 में किले क़ा निर्माण पूरा हुआ। इसकी दीवारें 18 मीटर ऊँची थीं। किले के चारों और 18 मीटर चौड़ी खाई बनाई गई थी। अब तो खाई के कुछ हिस्से को मिट्टी से भरकर उस ज़मीन का उपयोग किया जा रहा है। किले की एक तरफ की दीवार भी तोड़ दी गई है जिससे फैले हुए शहर में यातायात की सुविधा रहे। चौदहवीं शताब्दी में मुहम्मद तुगलक ने भी भील जाति के आदिवासियों के हमले से शहर की रक्षा करने के लिए किला बनवाया था। किला होते हुए भी सूरत पर हमले होते रहे, दुकानें और लोग लूटते रहे। शिवाजी ने भी सूरत पर दो बार हमला किया था।

इस किले के अतिरिक्त डच काल का कब्रिस्तान, कैथोलिक गिरजाघर और

संग्रहालय देखना नहीं भूलेंगे। यह संग्रहालय सरदार पटेल संग्रहालय कहलाता है। इसमें पत्थर और लकड़ी से बनी सुंदर मूर्तियाँ हैं। सूरत में दुनियाभर में मशहूर जरीकाम के नमूने हैं, तरह-तरह के वस्त्र और गहने हैं। चाँदी और सोने के तार से किया जाने वाला जरी का काम सूरत की बहुत ही प्राचीन कला है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मैगस्थेनस भारत आये थे तब उन्होंने भारत के बारे में जो कुछ लिखा था उसमें "सोने के कपड़े" का उल्लेख है। मुगलशासन के समय में इसका बहुत विकास हुआ था। इटली, जर्मनी, तुर्कस्तान, इजिप्ट, फ्रांस और इंग्लैंड में भी इसकी अच्छी माँग थी। सूरत में बने हुए सोने-चाँदी के धागे आज भी मद्रास, मैसूर, बनारस इत्यादि शहरों में भेजे जाते हैं और वहाँ पर जो साड़ियाँ और किनखाब बनते हैं उनमें इन धागों का प्रयोग होता है। इस संग्रहालय में आज 10,000 से भी अधिक वस्तुएँ संग्रहित हैं।

सूरत कपड़ा उद्योग के लिए भी मशहूर हैं। हाथकरघा भी है और बेशुमार मिलें भी। आजकल वहाँ हीरा-उद्योग का बोलबाला है। हीरे को काटने और पालिश करने का काम यहाँ होता है। एक जमाने में सूरत की गलियों में हीरे और जवाहरात की कई दुकानें थीं। मोती की लड़ियाँ आजकल दुकानों में जैसे फुँदने लटकते हैं; वैसे झूला करती थीं। पर फिर मुसलमान और मराठा राजाओं ने इस शहर पर कई बार हमले किए और वह उजड़ता गया, फिर बसता गया। आज यहाँ एक बार फिर हीरा उद्योग पनप रहा है।

सूरत शिक्षा और संस्कृति का भी केन्द्र है। गुजरात के महान कवि, लेखक एवं समाज सुधारक नर्मद, जिन्होंने "जय जय गरवी गुजरात" काव्य लिखा, उनकी यह जन्मभूमि है। दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय भी सूरत में ही है।

सूरत के आसपास कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। उन्हें देखकर फिर डांग के जंगल की ओर जाएँगे।

सूरत से 34 किलोमीटर दूर बारडोली नामका एक छोटा-सा नगर है। सन् 1921-22 में गांधीजी ने यहीं से बारडोली सत्याग्रह का प्रारंभ किया था। यह 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' था। अंग्रेज सरकार की कोई बात नहीं सुननी थी। इसके बाद सन् 1928 में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में अंग्रेज सरकार को कर नहीं देने का आंदोलन शुरू हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन में बारडोली का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर एक स्वराज आश्रम है। गांधीजी के साथियों ने इस आश्रम की स्थापना

की थी। इसमें एक "खादी सरंजाम कार्यालय" था। खादी बनाने के लिए आवश्यक सब तरह की सामग्री, जैसे कि चरखा, तकली इत्यादि यहाँ बनाया जाता था। भारत में यह पहला इस प्रकार का कार्यालय था। बारडोली में सरदार पटेल के संपूर्ण जीवन से संबंधित सरदार स्मृति नामक एक संग्रहालय भी है। संग्रहालय के पीछे चीकू का बगीचा है। चीकू के पेड़ों के नीचे एक चबूतरा बना है और उसके ऊपर सरदार पटेल की मूर्ति बैठाई गई हैं। ऐसी हूबहू मूर्ति है कि पलभर के लिए आप यही समझ बैठेंगें की स्वयं सरदार यहाँ बैठे हैं।

सत्याग्रह के लिए यात्रा

सूरत के एक ओर बारडोली है तो दूसरी ओर दांडी। यह वही दांडी है जहाँ **गांधीजी** ने नमक का कानून तोड़ा था। यह सन् 1930 की बात है। अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रही चल पड़े थे। अंग्रेज सरकार ने नमक के बारे में बड़ा विचित्र कानून बनाया था। नमक हमारे ही देश के समुद्र किनारे पर तैयार होता था। पर विदेशी सरकार ने उस नमक के प्रयोग पर प्रतिबंध

लगा दिया था। यह तो बहुत ही अन्याय भरी बात थी। गांधी जी ने कहा: ''हम दांडी के समुद्र किनारे जाएँगे और वहाँ बन रहे नमक को अपनी झोली में भर लेंगे''। सत्याग्रहियों ने यही किया और उन पर अंग्रेजों की लाठियाँ बरस पड़ीं। गांधीजी के साथ और भी कई सत्याग्रहियों को कैद किया गया। दांडीकूच की इस घटना की खबर सारे विश्व में फैल गई थी। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण सीमाचिह्न है।

□□

4

डांग

हम समुद्र तट पर ही चलते रहें तो इस पथ से किसी दिन पाकिस्तान पहुँच जाएँगे और हमारा गुजरात-दर्शन अधूरा रह जाएगा। इसलिए अब समुद्र किनारे को छोड़कर हम जंगलों की तरफ चलते हैं। यह अनोखी ही दुनिया है। डांग के जंगलों में शेर, हिरन, चीतल, चीता, रीछ, खरगोश, मोर, तीतर इत्यादि पाये जाते हैं। डांग जिले के बद्रीपदा के लगभग 97 वर्ग किलोमीटर के जंगल को सरकार ने "अभयारण्य" घोषित किया है। "अरण्य" याने जंगल और "अभय" याने जहाँ के प्राणियों को शिकारियों से किसी प्रकार का भय न हो। जंगल के प्राणियों का यदि शिकार होता रहा तो एक दिन ऐसा भी आयेगा जब पृथ्वी पर कहीं जानवर ही नहीं होगा। ऐसी स्थिति पर्यावरण के लिये अच्छी नहीं मानी जाती।

इस अभयारण्य के बीच में से पूर्णा नदी बहती है और उसके उत्तर में गीरा तथा दक्षिण में खपरी नदियाँ हैं। सह्याद्रि पर्वतमाला का कुछ हिस्सा डांग जिले में हैं। समद्रतल से लगभग 1000 मीटर की ऊँचाई पर समतल जमीन है, जहाँ सापुतारा नामका बहुत ही सुंदर स्थान है। सापुतारा याने साँप का निवास। यहाँ सर्पगंगा नदी के किनारे सांप की मूर्तियाँ बनाई गईं हैं और डांग के आदिवासी उनकी पूजा करते हैं। इन आदिवासियों का डांगीनृत्य बड़ा मशहूर है।

डांग जिले का मुख्य शहर है आह्वा। यहाँ होली के त्यौहार के ठीक एक सप्ताह पहले डांग दरबार का मेला लगता है। आदिवासी मुखिया उत्सव के अनुरूप
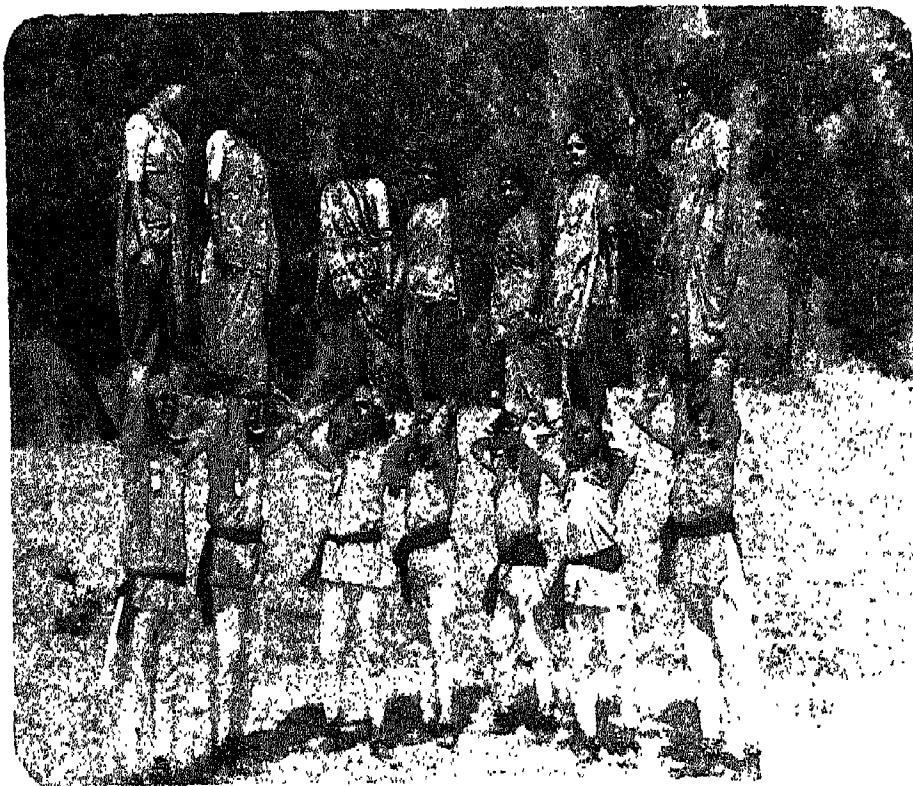
डांगी नृत्य

रंगीन कपड़े पहनकर खूब आग जलाते हैं। उसी के साथ आदिवासियों के कहालिया और तडपुर नामके खास वाद्यों के साथ नृत्य होते हैं।

पूरे गुजरात में मई-जून के महीनों को छोड़कर साल भर मेले लगते रहते हैं और त्यौहार मनाये जाते हैं। इनकी गिनती करने बैठें तो लगभग पन्द्रह सौ मेले और दो हज़ार त्यौहार हो जाएँगे। हमारी यात्रा के दौरान भी हम कुछ मेले और कुछ त्यौहारों में हिस्सा ले पाएँगे।

□□

5

भरूच और खेड़ा

अब हम आगे चलें। यह है भरूच शहर। नर्मदा नदी के किनारे बसा हुआ भरूच अरबी सागर से 48 किलोमीटर दूर है। जब ज्वार आता है तब बड़े-बड़े जहाज बहते हुए भरूच तक पहुँच जाते हैं। 48 किलोमीटर का समुद्री रास्ता काटने में तीन दिन लग जाते हैं। इस शहर का प्राचीन नाम है भृगुकच्छ। कहते हैं कि लगभग पाँच हजार साल पहले भृगु ऋषिने यहाँ अपना आश्रम बनाया था, इसलिए यह स्थान भृगुकच्छ कहलाया। लगभग ढाई हजार साल पहले ग्रीक प्रजा का भारत के साथ इसी बंदरगाह से व्यापार होता था। बाद में भी चीन, श्रीलंका, मध्यपूर्व के कुछ देश तथा पूर्व में जावा, सुमात्रा के साथ व्यापार होता रहा। अब नर्मदा नदी में बहाव के कारण मिट्टी जमा हो जाने से तथा सड़कों पर यातायात बढ़ जाने से बंदरगाह का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। भरूच के पास अंकलेश्वर में तेल निकलता है, जिसके कारण भरूच फिर एक बार महत्त्वपूर्ण शहर बन गया है।

भरूच जिले में नर्मदा नदी के किनारे शुक्लतीर्थ नाम का एक तीर्थस्थान है। उसी के पास एक बहुत ही बड़ा बड़ का पेड़ है, जिसे "कबीरबड़" कहते हैं। एक किवदंती के अनुसार संत कवि कबीर ने अपने दांत साफ करके दातुन की एक चीर इधर फेंकी थी। उसी से यह इतना विशाल पेड़ बन गया है। भरूच से आगे खेड़ा जिले का डाकोर नगर भी बड़ा तीर्थस्थान माना जाता है। एक भक्त ने द्वारका से श्रीकृष्ण की मूर्ति यहाँ लाकर मंदिर बनाया था। प्रत्येक शरद पूर्णिमा के दिन डाकोर

कबीर बड़

में बड़ा मेला लगता है। हज़ारों यात्री इस मेले में हिस्सा लेते हैं। मंदिर के प्रांगण में भजनों की धूम मच जाती है।

खेड़ा जिले में खेती, पशुधन और उससे संबंधित उद्योगों का काफी विकास हुआ है। आणंद शहर इसी जिले में हैं। शहर तो बहुत छोटा है लेकिन वहाँ अमूल डेरी है, जिसके कारण वह विख्यात हो गया है। इस डेरी में दूध का पाउडर, मक्खन, घी, पनीर इत्यादि बनते हैं। हमारे देश में बच्चों को दूध पिलाने के लिए जो पाउडर बनता हे उसका 63 प्रतिशत उत्पादन गुजरात में होता है और सारे भारत में जितना दूध का पाउडर बनता है उसमें 47 प्रतिशत योगदान गुजरात का है।

इस जिले का खंभात शहर प्राचीन बंदरगाह है। एक ज़माने में वह बहुत ही समृद्ध शहर था। बंदरगाह होने के कारण से अन्य देशों के साथ व्यापार होता था। खंभात में अकीक के पत्थर की खानें हैं। यह पत्थर हीरे जितना तो मूल्यवान नहीं है, लेकिन अकीक अल्प मूल्यवान पत्थर माना जाता है। इस्वी सन् पूर्व चौथी शताब्दी में रोमन लोग भारत से यह पत्थर मँगवाते थे और उसकी अंगूठियाँ बनवाते थे।

अकीक के रंग बड़े सुन्दर होते हैं। गहरे लाल रंग का अकीक सबसे कीमती

माना जाता है। खान में से निकालने के बाद अकीक को मार्च-अप्रैल के सूरज की धूप में लगभग दो महीनों तक सुखाया जाता है। पत्थर के भीतर पानी रह जाय तो उस पर काम करते समय वह टूट जाता है। उसे आग पर गरम करने से भी उसके टूटने का डर रहता है। इसलिए सबसे अच्छा तरीका है धूप में सुखाने का। सुखाने के बाद उसे गरम किया जाता है। बाद में उसे पालिश करके उससे माला, अंगूठी इत्यादि वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इन चीज़ों की कीमत चार-पाँच रुपयों से लेकर हज़ारों रुपयों तक की होती है।

खंभात की और एक विशेषता है "सूतर फेणी"। मैदे से बनी हुई यह मीठी सेवईयाँ मुँह में डालते ही पिघल जाती हैं। वे इतनी महीन होती हैं कि बच्चे उसे "बुढ़िया के बाल" कहते हैं।

इस प्रकार खेड़ा जिले में शरीर को तंदुरस्त रखने के लिए दूध है, स्वाद के लिए सूतरफेणी है, शरीर की सजावट के लिए अकीक के आभूषण हैं और जीवन को सब प्रकार से समृद्ध बनाने के लिए शिक्षा-संस्थाएँ भी हैं। इनमें सबसे अधिक विख्यात है वल्लभविद्यानगर विश्वविद्यालय। अधिकतर ऐसा होता है कि शहर और उसकी आबादी की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विद्यालय एवं विश्वविद्यालय बनते हैं। इधर बात उलटी है। विश्वविद्यालय की योजना पहले बनी, ज़मीन बाद में मिली। वहाँ पर कालेज बने, उससे जुड़ी हुई अन्य संस्थाएँ बनीं। इस प्रकार विद्या को केन्द्र में रखकर पूरा नगर रचा गया। इस विद्यालय का नाम सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम से जुड़ा है। वे हमेशा कहते थे कि शिक्षा ऐसी हो जिससे विद्यार्थी चरित्रवान नागरिक बने। इस विद्यालय का मूल मंत्र है: "शीलवृत्तफलंश्रुतम्", याने ज्ञान का फल है शीलयुक्त व्यवहार। शिक्षा तब ही सार्थक है जब वह मनुष्य के चारित्र्य का गठन कर सके। सारा गुजरात ऐसी शिक्षा संस्थाओं से समृद्ध है।

□□

6

वडोदरा

शिक्षा और संस्कृति को महत्व देने वाला और एक स्थान है। वडोदरा। विश्वामित्री नदी के किनारे बसा हुआ वडोदरा गायकवाड़ राजाओं के शासनकाल में एक आदर्श नगर बन पाया था। कला और संस्कृति के क्षेत्र में गायकवाड़ के ज़माने में जो प्रगति हुई थी वह आज भी कायम है। महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने जिस विश्वविद्यालय की स्थापना की, उसका स्थान आज देश के अग्रगण्य विश्वविद्यालयों में हैं।

वडोदरा में घूमते समय अधिकतर स्थान ऐसे मिलेंगे जो गायकवाड़ राजाओं से संबंधित हैं। नज़रबाग महल पुरानी शैली में बना हुआ महल है। गायकवाड़ राजा विशेष समारोहों के लिए इस महल का उपयोग करते थे। आजकल यहाँ गायकवाड़ परिवार के कुल की वस्तुएँ रखी गईं हैं। इन्हीं राजाओं का इटालियन शैली में बना और एक महल है--मकरपुरा महल। अब तो उसे भारतीय वायुसेना का ट्रेनिंग स्कूल बना दिया गया है। लालबाग महल का प्रताप विलास महल पाश्चात्य कला की "रेनेसां" शैली की इमारत है। इस समय उसमें रेलवे स्टाफ कालेज बना हुआ है। यहाँ एक खंड में छोटी रेलवे का मॉडल बनाकर रेलगाडियों की जटिल कारर्वाइयों का प्रदर्शन किया गया है।

शाही परिवार के रहने के लिये जो महल था उसका नाम है लक्ष्मी विलास महल। इसके निर्माण में भारतीय और मुस्लिम स्थापत्य कला का मिश्रण दिखाई देता

है। इस भव्य महल के दरबार खंड में पैर रखते ही आँखें चकाचौंध हो जाएँगी। खंड का फर्श इटालियन पच्चीकारी से बना है। दीवारों पर भी पच्चीकारी की सजावट है। महल में पुराने शस्त्रों तथा कांसा, संगमरमर और मिट्टी की मूर्तियों का असाधारण संग्रह है। टिकट खरीद कर हम ये सब देख सकते हैं। महाराजा फतेह सिंह संग्रहालय में कला का वैभव संग्रहित है। पाश्चात्य कला के रफाएल, तितियन और म्युरिलो जैसे महान चित्रकारों की मौलिक कृतियाँ, आधुनिक युग के पाश्चात्य एवं भारतीय चित्र, ग्रीक व रोमन कला के नमूने, चीनी व जापानी कलाकृतियाँ, भारतीय कला की भी उत्कृष्ट वस्तुओं का विशाल संग्रह यहाँ पाया जाता है।

वडोदरा का भद्र महल मुस्लिम राजाओं ने बनाया था लेकिन पिलाजीराव और दामाजीराव नामके पहले दो गायकवाड़ राजा इसी महल में रहे थे। इस महल में संगमरमर की बहुत-सी सुदंर नक्काशी हैं।

गायकवाड़ राजाओं ने अपने वडोदरा राज्य को हर तरह से समृद्ध करना चाहा था। उन दिनों की समृद्धि तो आज दिखाई नहीं देती, लेकिन उसके अवशेष इन महलों और संग्रहालयों में आज भी मौजूद हैं। गायकवाड़ शासकों के परिवारों के शव-कक्ष के ऊपर सुंदर इमारत बनाई गई है। इसका नाम है—कीर्ति-मंदिर। कीर्ति-मंदिर की दीवारों पर बंगाल के सुप्रसिद्ध चित्रकार नंदलाल बोस ने चित्र बनाये हैं। इस प्रकार, मृत्यु के बाद भी गायकवाड़ परिवार ने कला और संस्कृति का साथ निभाया है।

सन् 1894 में गायकवाड़ राजा ने वडोदरा संग्रहालय की स्थापना की थी। आज उसमें कला और पुरातत्व, प्राकृतिक इतिहास, विज्ञान और मानवजाति विज्ञान का प्रभावशाली संग्रह है। इसके साथ गायकवाड राजा द्वारा ही स्थापित चित्रदीर्घा है। इसमें विदेशी कलाकारों की कृतियों के साथ मुगल लघुचित्र तथा तालपत्र पर अंकित बौद्ध और जैन पांडुलिपियाँ हैं।

वडोदरा में आकर यदि हम सरदार वल्लभभाई पटेल तारामंडल (प्लेनेटोरियम) न देखें तो यात्रा अधूरी रह जाएगी। सयाजीबाग में 200 लोग बैठ सके इतना बड़ा तारामंडल बनाया गया है। तारे और नक्षत्रों का कार्यक्रम तैयार करने के लिए पूर्व जर्मनी के एक विशेषज्ञ को बुलाया गया था। तारामंडल की कुर्सी पर बैठकर उसके गोलाकार गुम्बज में जब हमारे जाने पहचाने स्वाति, कृत्तिका इत्यादि नक्षत्र घूमने लगते हैं, बदलती हुई ऋतुओं के साथ आकाश में इन सब के स्थान बदल जाते हैं,

तब पलभर के लिए हम इस बात को भूल जाते हैं कि हम इस पृथ्वी पर घूमते-फिरते मनुष्य हैं। उस समय तो उन अनगिनत तारों के बीच में हम भी उस अलौकिक सौंदर्य का एक हिस्सा बन जाते हैं। पर कार्यक्रम समाप्त होते ही तारों भरा आकाश अदृश्य हो जाता है। बिजली के बल्ब जल उठते हैं और अन्य लोगों के साथ हम भी तारामंडल से बाहर निकलकर एक बार फिर भूमंडल पर पैर जमा लेते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने जो प्रगति की है उसका परिचय देनेवाले कई स्थान वडोदरा में हैं। एक तो यह तारामंडल।

दूसरा है दवाइयों और पैट्रोकेमिकल्स के बड़े-बड़े कारखाने। वडोदरा शहर को छोड़ते ही कुछ अजीब-सी गंध आने लगती है। वातानुकूलित ट्रेन में आप चैन की नींद ले रहे हों तब भी उस गंध से पता चल जाएगा कि ट्रेन वडोदरा से बाहर निकल रही है। बीमारियों को दूर करने वाली दवाइयाँ जहाँ बनती हैं, उन कारखानों की यह गंध है। उस समय तो हम नाक सिकोड लेते हैं लेकिन कोई बीमार हो जाए तो उसी दवाई के लिए दौड़ते हैं।

पैट्रोकेमिकल्स के कारखानों में भी कई प्रकार के रसायन बनते हैं, जिनका हमारे उद्योगों में उपयोग किया जाता है। ये कारखानें वडोदरा शहर से कुछ दूरी पर बनाये गये हैं।

कारखानों की गंध तो जब आप वडोदरा छोडेंगे तब मिलेगी। अभी तो जिससे तबियत खुश हो जाय, वह तो मुँह में पानी लाने वाली स्वादिष्ट चीज़ों की ही गंध हो सकती है। इसलिए अब हम चलते हैं वडोदरा स्टेशन के पास। यहाँ से हमें आगे जाने के लिए ट्रेनें भी मिलेंगीं, लेकिन स्टेशन के पास आये हैं तो ज़रा इस कक्कड़ बाज़ार में झांक लेते हैं। कहते हैं कि "घ्राणेन अर्धभोजनम्", याने खुशबू से ही आधा भोजन हो जाता है। तो अब मुँह में पानी लाने वाली कुछ गंधों का ही सेवन कर लेते हैं। इस बाज़ार में लो हरी सब्जियों के ढेर लगे हैं। इस में क़तार गाँव की सेम हैं, छोटे-छोटे गोल बैंगन हैं, हरी अरहर के दाने हैं, शकरकंद और जामुनी रंग के कंद हैं-संक्षेप में कहें तो "उंधियुं" के लिए जो सब्जियाँ चाहिए वे सारी यहाँ मौजूद हैं। मुँह में पानी आ गया क्या? इस समय हम "उंधियुं" पकाने की झंझट में नहीं पड़ सकते, न ही हमारे पास इतना समय है। आगे चलते हैं। कक्कड़ बाज़ार के सामने बड़ा चौक है जहाँ से शहर के सभी भागों में जाने के लिए बसें मिलती हैं। उसकी दूसरी ओर के बाजार में 'खमण ढोकला', 'लीलो चेवड़ो' और 'कोर्नफ्लेक्स चेवड़ो'

मिलते हैं। खमण ढोकला चने की दाल को पीसकर भाप से पकाकर बनाया जाता है। स्पंज की तरह नरम, पीले रंग का और स्वाद में नमकीन होता है। "लीलो चेवड़ो" याने हरा चिउड़ा। उस में आलू इत्यादि डला होता है। और कोर्नफ्लेक्स को तलकर उसमें तिल इत्यादि डालकर बनाया गया चिउड़ा है कोर्नफ्लेक्स चिउड़ा।

डभोई

कुछ चिउड़ा और कुछ खमण ढोकला लेकर बस में बैठ जाते हैं। यहाँ से हमें डभोई का किला देखने जाना है।

वडोदरा से 29 किलोमीटर दक्षिण में है डभोई। 13 वीं शताब्दी का यह किला सोलंकी युग में राजा सिद्धराज के समय में बनाया गया था। हिंदू स्थापत्य कला का यह उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। किले की चारों दिशा में चार दरवाज़े हैं। प्रत्येक दरवाज़े पर बेनमून नक्काशी की गई है। चारों दरवाज़ों में सबसे उत्तम है हीरा भागोल के नाम से प्रचलित दरवाज़ा। कहा जाता है कि हीरा नामके एक अत्यंत कुशल शिल्पी ने इस दरवाज़े को बनाया था। उन दिनों यदि कोई शिल्पी किले के निर्माण में असाधारण कारीगरी दिखा देता था तो ऐसी कला का उपयोग वह और कहीं न कर सके इसलिए राजा उसे किले की दीवार में ही जिंदा चुनवा देते थे। हीरा भी इसी तरह डभोई के किले की दीवार में चिन दिया गया। ऐसी बात सुनकर रौंगटे खड़े हो जाते हैं। अनारकली की कहानी में भी ऐसी ही कुछ बात है ना? मुगल बादशाह अकबर ने अपने बेटे सलीम से अनारकली को अलग करने के लिए उसे दीवार में चिनवा दिया था। खैर..... डभोई के किले में मलिका माता का मंदिर है। उसका शिल्प भी अद्भुत है।

संखेड़ा

कला का और एक नमूना इसी प्रदेश में देखना है तो संखेड़ा चले जाते हैं। संखेड़ा डभोई के पास ही है। लोग कहते हैं कि लगभग 500 वर्ष पहले उत्तर गुजरात के चांपानेर नगर पर मुसलमानों ने हमला किया था। तब वहाँ से पंचोली जाति के कुछ हिंदू बढ़ई संखेड़ा गाँव चले आये थे। उन का पूरा परिवार लाख की कारीगरी में कुशल था। लाख पेड़ के रस से बनती है। उसे कई तरह से प्रयोग में लाया जाता है। लाख की चूड़ियाँ तो गुजरात और राजस्थान में काफी पहनी जाती हैं। हाँ, तो ये पंचोली बढ़ई लकड़ी से कुर्सी, मेज, पालने, खिलौने इत्यादि बनाते हैं और उस पर लाख के रंगों से अत्यंत कलात्मक चित्रकारी करते हैं। महाभारत में आपने पढ़ा ही

संखेड़ा का काम

होगा कि कौरवों ने पांडवों को खतम करने की कई तरकीबें की थीं। उनमें से एक थी उनको लाक्षागृह में जला डालने की। लाख का प्रयोग तो बहुत पुराना है। संखेड़ा के पास छोटा उदेपुर के जंगलों में "कुसुम" के पेड़ हैं। बढ़ई इस पेड़ की लकड़ी से कई प्रकार की वस्तुएँ तैयार करते हैं। उसे पानी के रंगों से रंगते हैं और ऊपर कुसुम की लाख से डिज़ाइनें बनाते हैं। वैसे लाख का काम भारत के अन्य स्थानों में भी होता है लेकिन इस कला के क्षेत्र में संखेड़ा पूरे भारत में मशहूर है।

□□

7

पंचमहाल

हम तो कुछ ज्यादा ही घूमने लगे हैं। गुजरात के इतने सारे जिलों के इतने सारे शहर और गाँव-सब कुछ देखने लगेंगे तो दिवाली की छुट्टियाँ तो क्या, गर्मी की छुट्टियाँ भी खतम हो जाएँगी और हम सौराष्ट्र तक भी नहीं पहुँच पाएँगे। इसलिए जरा जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाएँ तो ठीक रहेगा।

डभोई का किला देखते समय हमने मुगल बादशाहों को याद किया था। पंचमहाल जिले में उनको और एक बार याद करना होगा। यहाँ के दाहोद शहर में शाहजहाँ के पुत्र औरंगज़ेब का जन्म हुआ था। मुगलों से पहले गुजरात का यह प्रदेश सुलतान महमूद बेगड़ा के अधीन था। इस सुलतान ने सन् 1484 में पंचमहाल जिले के चांपानेर शहर को अपनी नई राजधानी बनाया था। उसने शहर के चारों ओर किला बंदी कर दी और शहर में एक जामामस्जिद भी बनवाई जिसकी स्थापत्य-कला देखते ही बनती है। चांपानेर में जैन स्थापत्य कला के साथ इस इस्लामी कला का मिश्रण होने से अत्यंत सुदंर शैली का सृजन हुआ है।

यह शहर पावागढ़ नामक पहाड़ी के पास है। राजा वनराज चावड़ा के सेनापति चांपा ने इसे लगभग आठवीं शताब्दी में बसाया था। एक किवदंती के अनुसार जयसिह देव नाम का एक पताई रावल वंश का राजा नवरात्रि के त्यौहारों में नृत्य-गान करती हुई महिलाओं को देखने निकला। उनमें एक महिला उसे बहुत ही सुंदर लगी। उसके प्रति आकृष्ट होकर जयसिह देव ने उसका आँचल पकड़ लिया। यह महिला कोई साधारण नारी नहीं थी, मनुष्य का रूप धारण किये स्वयं देवी

कालिका थीं। देवी क्रुद्ध हुई और उसने जयसिंह देव को श्राप दिया। इसी के बाद महमूद बेगड़ा के साथ उसकी लड़ाई हुई और वह हार ग़या।

पावागढ़ की लगभग ढाई हज़ार फीट ऊँची पहाड़ी पर सबसे ऊपर देवी महाकाली का बड़ा मंदिर है। कच्चे रास्ते या पत्थर से बनी सीढी के रास्ते से ऊपर जा सकते हैं।

उससे लगभग एक हज़ार फीट नीचे की ओर "माची हवेली" नामका समतल स्थान है। वहाँ भद्रकाली का मंदिर है। यात्रियों के रहने के लिए धर्मशालाएँ भी बनी हुई हैं।

माची हवेली से नीचे किला है। इस तरह पहाड़ी के तीन हिस्से हैं, नीचे किले के खंडहर, बीच में माची हवेली और किले की दीवारें और ऊपर फिर से किले की दीवारें और मंदिर। महाकाली के मंदिर के पीछे दिगंबर संप्रदाय के कई जैन मंदिर भी बने हुए हैं। उस तरफ "नवलख कोठार" के खंडहर भी हैं। पताई रावलों का यह अन्नभंडार था। भद्रकाली मंदिर के पास उनके महल के खंडहर मौजूद हैं।

गुजरात का डांडिया रास

इस इलाके की शान देखनी हो तो नवरात्रि के दिनों में ही यहाँ आना चाहिए। वैसे तो यह त्यौहार पूरे गुजरात में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है लेकिन जहाँ कहीं महाकाली, अंबा, भवानी-जो एक ही देवी के नाम हैं–के मंदिर होते है वहाँ तो नवरात्रि के नौ दिन उत्सव का वातावरण बना रहता है। दशहरा के दिन वह समाप्त होता है। गुजरात के विख्यात लोकनृत्य गरबा और रास रात-रातभर चलते रहते हैं।

छेदवाले मिट्टी के घड़े के बीच में दीप जलाया जाता है। यह दीप देवी अंबा का प्रतीक है। उसको बीच में रखकर उसके चारों ओर महिलाएँ वर्गाकार में तालियाँ बजाती हुई नृत्य करती हैं। देवी की प्रशस्ति के गीत गाती हैं। पावागढ़ का विख्यात गरबा सुना हैं?

"मा पावा ते गढ़ थी ऊतर्या मा काली रे
वसाव्युं चांपानेर पावागढ़ वाली रे..."

इसका अर्थ है कि देवी महाकाली पावागढ़ से नीचे उतर आई और उस पावागढ़ वाली ने ही चांपानेर शहर बसाया।

"गरबा" महिलाएँ करती हैं। पुरुष भी इसी प्रकार तालियों के साथ वर्गाकार नृत्य करते हैं, जिसे "गरबी" कहते हैं। आजकल तो नवरात्रि के दिनों में गरबा, गरबी और रास करने वाले विभिन्न समूहों की प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है। लोगों पर ऐसी मस्ती छा जाती है कि देखने वालों पर उसका असर पड़े बिना नहीं रहता। छोटे-बड़े, सब इस में शामिल हो जाते हैं।

पावागढ़ से आगे चलने से पहले यहाँ की और एक खास बात भी जान लें। मुगल बादशाह अकबर के दरबार में नौ-रत्न थे, जिनमें एक था महान संगीतकार तानसेन। उससे पहले एक और महान संगीतकार हो चुका था बैजू। उस युग के संगीतकारों को याद करते समय इन दोनों के नाम साथ ही लिये जाते हैं। बैजू का जन्म इस पावागढ़ नगरी में ही हुआ था।

अब पंचमहाल के कलोल शहर में तेल और प्राकृतिक गैस तथा रासायनिक खाद के कारखानों पर एक नज़र डालते हुए आगे निकल चलते हैं। बीच में अहमदाबाद जिला आता है। यहाँ तो देखने के स्थान इतने अधिक हैं कि उसके बाद

शायद उत्तर गुजरात में जाना हम टाल ही दें। इसलिए उचित यही होगा कि हम महेसाणा, साबरकांठा और बनासकांठा का विहंगावलोकन करने के बाद ही अहमदाबाद में अपना तंबू डालें।

□□

8

उत्तर गुजरात

उत्तर गुजरात को सोलंकी वंश के राजाओं ने स्थापत्य कला से बहुत समृद्ध किया था। इसके अवशेष आज भी पाये जाते हैं। उदाहरण के रूप में देखें तो महेसाणा जिले में दसवीं शताब्दी में राजा मूलराज सोलंकी ने "रूद्रमाल" नामका मंदिर बनवाया था। मूलराज सोलंकी को उसके मामा ने गोद लिया था। सत्ता की लालसा से उसने अपने मामा की हत्या की। बाद में अपने इस भयानक कृत्य का उसे बहुत ही पछतावा हुआ। प्रायश्चित्त के रूप में उसने रूद्र महालय बनवाने का निश्चय किया। एक गुजराती काव्य में इस "रूद्रमाल" का वर्णन पाया जाता है। उसके चार द्वार, तीन मंडप और 1600 खंभे थे। हीरे व मूल्यवान मणियों से जड़ित अठारह हज़ार मूर्तियाँ थीं और सोने के कलश पर सत्रह हजार ध्वजाएँ लहराती थीं। यह "रूद्रमाल" इतना ऊँचा था कि सिधपुर से बीस किलोमीटर की दूरी पर आये हुए पाटण शहर की पनिहारिनें रूद्रमाल से दिखाई देती थीं। विदेशी हमलावरों के आक्रमण से इसका नाश हुआ था। आज तो वह खंडहर की हालत में हैं। कई खंभे टूट गये हैं। दीवारें ढह गई हैं। लेकिन कुछ खंभों की नक्काशी अब भी दिखाई देती है, जिससे प्राचीन भव्यता का अनुमान हो सकता है।

पाटण का नाम लेते ही वहाँ का "पटोला" याद आ जाता है। "पटोला" एक खास प्रकार की रेशमी साड़ी होती है। उसमें डिज़ाइन के अनुसार पहले धागों को रंगा जाता है और उसके बाद बुनाई होती है। यह काम बहुत ही मुश्किल है। कभी-कभी एक साड़ी बनाने में एक साल भी लग जाता है। एक-एक पटोले का मूल्य

दो हज़ार से लेकर दस हज़ार रुपये तक होता है। पाटण की यह परंपरागत कला आज भी जीवित है।

इसके अतिरिक्त यहाँ का स्थापत्य भी बेजोड़ है। आठवीं शताब्दी के राजा वनराज चावड़ा ने अणहिलवाड़ पाटण शहर बसाया था। सोलंकी वंश के राजा सिद्धराज जयसिंह ने सहस्रलिंग तालाब बनवाया था। इस तालाब के आसपास शिव के एक हज़ार मंदिर हैं। आरती के समय जब इन सभी मंदिरों से घंटें बजते हैं तो चारों दिशाएँ मधुर स्वरों से गूँज उठती हैं।

सोलंकी वंश के ही राजा भीमदेव ने उसकी रानी उदयमती के आग्रह से पाटण में "राण की बाव" नाम की बावड़ी बनवाई थी। उसकी रचना और नक्काशी इतनी सुंदर है कि इसको लेकर गुजरात में एक मुहावरा बन गया है:

"राणकी बाव ने दामोदर कूवो
जेणे ना जोयो ते जीवतो मूवो।"

अर्थात् राणकी बाव और दामोदर कुआँ जिसने नहीं देखा हो वह जिंदा होते हुए भी मरे के समान है।

महेसाणा जिले के मोढेरा में जो सूर्य मंदिर है उसको देखकर तो हमें वहाँ से हटने का मन नहीं करेगा। सोलंकी राजा सूर्यवंशी थे। भीमदेव ने ही यह सूर्य मंदिर बनवाया था। पानी की बावली से सीढ़ियाँ ऊपर मंदिर की ओर जाती हैं। सबसे पहले है सभा मंडप। इस मंडप के खंभों और दीवारों पर देव-देवियों की मूर्तियाँ बनी हैं, पशु-पक्षी और फूलों की नक्काशी की गई है। अंदर गर्भगृह में सूर्य की मूर्ति थी, जो आज मौजूद नहीं है। वह मूर्ति इस तरह बनाई गई थी कि सूर्योदय के समय सूर्य की पहली किरण उस मूर्ति के चेहरे पर पड़े। इस के नीचे तह-खाना है। उसमें भी शायद सूर्य की ही मूर्ति थी। गर्भगृह की दीवारों में बनी ताकों में सूर्य की बारह मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों के घुटनों तक ऊँचे जूते देखकर ऐसा अनुमान किया जाता है कि वे इरानी शैली में बनी मूर्तियाँ हैं। महमूद गजनवी ने कई मंदिरो का नाश किया था, उनमें से एक मोढेरा का यह सूर्य मंदिर भी है। खंडहर की हालत में भी वह इतना प्रभावशाली दिखाई देता है, तो तब तो कैसा होगा!

साबरकांठा जिले का शामलाजी और बनासकांठा का अंबाजी भी देखने लायक तीर्थस्थान हैं। शामलाजी में मंदिर में श्याम रंग के कृष्ण की मूर्ति है और अंबाजी के मंदिर में देवी अंबा की। अंबाजी के मंदिर के प्रांगण में "भवाई" नामका गुजरात का

मोढेरा का सूर्य मंदिर

लोकनाटक होता है। यह नाटक रात भर चलता है और हजारों लोग उसे देखने आते हैं। अंबा माता की स्तुति से नाटक का प्रारंभ होता है और बड़े रोचक ढंग से कहानी आगे चलती है। इसमें संवाद होते हैं, गीत और गरबा भी होते हैं। रंगलो नाम का विदूषक दर्शकों का मनोरंजन करता है। वह नाटक की कहानी और दर्शकों के बीच के पुल जैसा होता है। दर्शकों के साथ हँसी मज़ाक करता हुआ उनको भी नाटक में शामिल कर लेता है। एक रात अंबाजी में रूक जाते हैं। भवाई देखने का मौका मिल रहा है, उसे हाथ से जाने न दें। कल सुबह की बस से अहमदाबाद चले जाएँगे।

□□

9

200 किलोमीटर का रास्ता कैसे कट गया, पता ही नहीं चला। रातभर सबने भवाई की मौज ली इसलिए बस में बैठते ही खर्राटें मारना शुरू हो गया।

अहमदाबाद पहुँचकर बस अड्डे से बाहर निकले तो चारों ओर भीड़भाड़, दुकानें, 'ट्रेफिक जाम'। उफ! लगता है बहुत पुराना शहर है। हाँ, पुराना ही है। सन् 1411 में मुसलमान सुलतान अहमद शाह ने साबरमती नदी के किनारे अपना डेरा डाला था। कहानी ऐसी है कि अहमद शाह के डरावने कुत्ते नदी किनारे घूमते हुए खरगोशों को देखकर भौंकने लगे थे। वे खरगोश डरके मारे भागे नहीं। उन्होंने उलटा उन कुत्तों का सामना किया। यह देखकर सुलतान दंग रह गया। उसने सोचा कि जिस धरती के खरगोश ऐसे हो उसमें जरूर कुछ खास गुण हैं। मुस्लिम संत अहमद खट्टु गंज बक्श से सलाह लेकर अहमद शाह ने साबरमती नदी के किनारे एक शहर बसाया। उसी का नाम अहमदाबाद रखा गया। गुजराती में इसे "अमदावाद" कहते हैं।

इस शहर में बहुत ही सुंदर ऐतिहासिक इमारतें हैं। मुगलों के आने से पहले की मुस्लिम स्थापत्यकला के साथ हिंदू शैली का सुरुचिपूर्ण मेल और बाद के मुगल व जैन शैली के स्थापत्य भी यहाँ मौजूद हैं। यही नहीं, गांधीजी का साबरमती आश्रम है, बेसुमार कपड़ा-मिलें हैं। कपड़ों के इतिहास को सजीव बनाता हुआ संग्रहालय है।

बस, आप कम-से-कम आठ दिन का प्रोग्राम बनाकर घूमते रहिए। ये भी कम पड़ेंगे, क्यों कि अहमदाबाद के आसपास लोथल, अडालज बाव और नल सरोवर तो देखने ही देखने हैं।

हमारे ठहरने का प्रबंध ला गार्डन के पास एक मित्र के घर में किया गया है। शाम के समय ला गार्डन की रौनक भी देखने लायक होती है, इसलिए दो-चार दिन वहाँ ठहरेंगे, दो-चार दिन रेलवे स्टेशन के पास धर्मशाला में ठहर जाएँगे।

मित्र के घर पहुँचकर पहले तो नहा-धो लेते हैं। इतने दिन के कपड़े भी धोने हैं। घर के बीचोबीच खुली जगह है। वहाँ कपड़े सुखाने के लिये रस्सी बंधी हुई है। धूप भी अच्छी आ रही है। इधर रसोई से दूधपाक की खुशबू भी अच्छी आ रही है। बढ़िया भोजन मिलने वाला है। बरामदे में एक किनारे पर दरी बिछा दी गई है। सामने लकड़ी की छोटी चौकियाँ रखी हैं। हम दरी पर बैठ गए तो खाना परोसना शुरू हुआ। चौकी पर स्टील की थाली है। थाली में तीन कटोरियाँ हैं। थाली के बाहर पानी पीने का गिलास रखा है। दरी पर खद्दर का नैपकीन है, उसे हमने गोद में बिछा लिया है।

सबसे पहले आया दूधपाक। दूध में थोड़े से चावल डाले हैं। रबड़ी से पतला है और दूध से गाढ़ा है। पीसी हुई इलाइची और केसर भी है। बादाम के पतले-पतले टुकड़े भी हैं। दूधपाक के पीछे चली आ रही हैं छोटी-छोटी गोलमटोल पुरियाँ और यह हरी-हरी गोल-गोल चीज़ क्या है? इसे पातरा कहते हैं। अरबी के पत्तों पर बेसन लगाकर उसको बेलन के आकार में मोड़ देते हैं। फिर भाप से पकाकर, बहुत सारी सरसों और तिल से छौंकते हैं। पातरा के पीछे है कढ़ी। खट्टे दही और बेसन से बनती है। और ये हैं अंकुरित मोठ। अंकुरित धान्यों में विटामिन अधिक होते हैं। गांधीजी ने अपने आश्रम में इन बातों पर ज़ोर दिया था, इसीलिए गुजराती घरों में अंकुरित धान्य आम पाये जाते हैं। थाली में एक कटोरी अभी खाली है। लो, भर गई। इसमें आ गई लौकी और मटर की रेसेदार सब्जी। एक सूखी सब्जी भी है, सेम और बैंगन की। वही कतारगाम वाली सेम है। थाली में एक और कुछ सलाद, चटनी और रायता भी रख दिया गया है। बहुत ही स्वादिष्ट खाना है। पुरियाँ खा लीं तो चावल आये। चावल के साथ मूंग के पापड़ भी। खाना खाकर हाथ धोये तो हाथ में छोटी बोतल थमा दी गई। उसमें भुनी हुई नमकीन सौंफ थी। गुजरात में भोजन के बाद ऐसा कुछ खाने की प्रथा है। उसे "मुखवास" कहते हैं। "वास" याने गंध। मुँह में से भोजन की गंध दूर करने के लिए मुखवास ख़ाया जाता है।
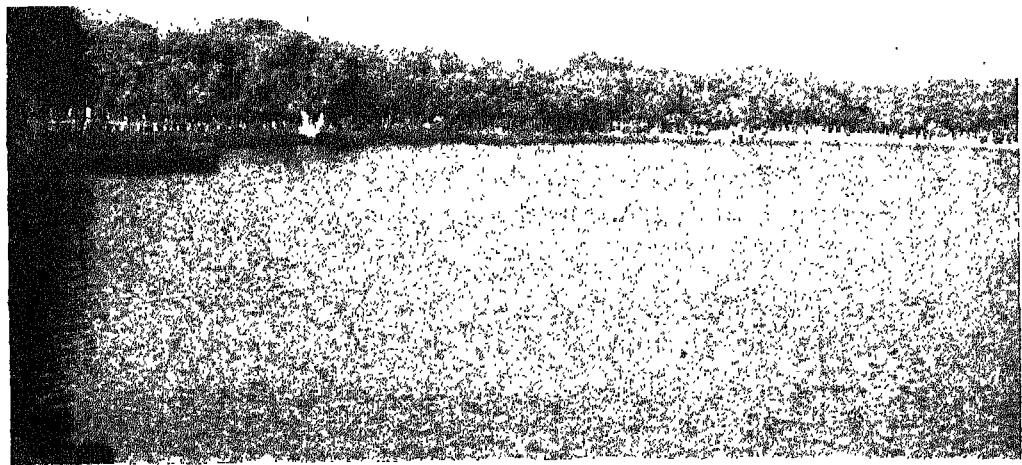
कांकरिया सरोवर

इतना बढ़िया भोजन खाने के बाद पलकें नींद से बोझिल हो गईं। रात की "भवाई" का भी नशा था। थोड़ी देर सो ही जाते हैं। फिर शाम को कांकरिया सरोवर की सैर करने जाएँगे। सुना है कि यह बड़ा सुंदर सरोवर है। जहांगीर और नूरजहाँ इस सरोवर में नौका विहार किया करते थे।

कांकरिया सरोवर

सन् 1451 में सुलतान कुत्बुद्दीन ने यह सरोवर बनवाया था। इसीलिए इसका असली नाम "हौजे कुत्ब" था। इसकी परिधि दो किलोमीटर से भी अधिक है। सरोवर के बीच में एक द्वीप है। उस पर महल बना है, बगीचा भी है। इसे नगीना-वाड़ी कहते हैं। अहमदाबाद में गरमी काफी पड़ती है। इससे बचने के लिए यह "ग्रीष्ममहल" बनवाया गया था। आजकल अहमदाबाद की नगर-पालिका ने यहाँ बालवाटिका, पिकनिक-घर, खुला प्रेक्षागृह, छोटा-सा मछली-घर और चिड़ियाघर बनाये हैं। बालवाटिका में बच्चों के लिए सुंदर पुस्तकालय है, खिलौना-घर और शीशा घर है। शीशा घर में तरह-तरह के शीशे लगे हैं। किसी में आप ठिगने और मोटे दिखेंगे तो किसी में लंबे और पतले। हँस,हँसकर पेट में बल पड़ जाएँगे।

जहांगीर और नूरजहाँ की तरह हम भी नौकाविहार कर लें। फिर ला गार्डन चले जाएँगे।

ला गार्डन

यह एक साधारण-सा बगीचा ही है, लेकिन इसके मशहूर होने के कारण कुछ और हैं। बगीचे के बाहर की फुटपाथ पर बहुत सारी ग्रामीण महिलाएँ लोक कला की

सुंदर कृतियाँ बेचने बैठती हैं। गुजरात की कढ़ाई एक अनोखी चीज़ है। गुजराती में कढ़ाई को "भरत" कहते हैं। जो कौम कढ़ाई करती है उन्हीं के नाम से वह कढ़ाई पहचानी जाती है, जैसे कि मोची भरत, कणबी भरत, काठी भरत इत्यादि। सौराष्ट्र और कच्छ की कुछ कोमें भी बहुत सुंदर कढ़ाई करती हैं। घर को सजाने के लिए "चाकला", "तोरण" आदि होते हैं। पुरुष और स्त्रियों के पहनने के वस्त्रों पर भी कढ़ाई होती है। इसी प्रकार पशुओं को ओढ़ने व सजाने के कपड़ों को कढ़ाई से सुशोभित किया जाता है। इनके अतिरिक्त थैले, बटुए इत्यादि भी बनाये जाते हैं। आजकल तो ये महिलाएँ केवल ला गार्डन की फुटपाथ पर नहीं, दिल्ली के जनपथ पर और बम्बई के होटलों के बाहर भी बड़ी कुशलता से अपनी कला विदेशियों को और अन्यों को बेचती हैं।

हमने भी आठ रुपये का एक बटुआ और पचीस रुपये का एक थैला खरीद डाला। आगे चलें तो बाप रे बाप, कितनी भीड़ है यहाँ। लोग खाने पीने की मौज मना रहे हैं। पूरा रास्ता ही भेलपुरी, पानीपुरी, पाँऊ-भाजी, कोठी का आइसक्रीम इत्यादि बेचनेवालों की रेहड़ियों से खचाखच भर गया है। किसी ने फुटपाथ पर एकाध बैंच लगा दी है। अधिकतर लोग अपनी मोटर में बैठकर या स्कूटर और मोटरबाइक पर बैठकर ही चाट का स्वाद लेते हैं। हम जैसे फक्कड़ हों वह खड़े रहकर खाएँ। वैसे दिन में दूधपाक इत्यादि इतना ज्यादा खा लिया था कि खास भूख नहीं है, पर इन चीजों से कुछ का स्वाद कर लेना भी बढ़िया रहेगा। नहीं चखेंगे तो यह शहर हमसे नाराज हो जाएगा और ला गार्डन तो रूठ ही जाएगा।

अहमदाबाद-दर्शन

अहमदाबाद में दर्शनीय स्थान इतने अधिक हैं कि एक टूरिस्ट की तरह ही सब कुछ फटाफट देख लेना होगा। साबरमती आश्रम को बहुत गौर से देखना है तो पहले अन्य स्थान देख लेते हैं। आश्रम आखिर में देखेंगे।

सुलतान अहमद शाह ने सन् 1423 में पीले रेतीले पत्थर से जामामस्जिद बनवाई थी। हर शुक्रवार को यहाँ बहुत बड़ी नमाज़ होती थी। इस मस्जिद में 260 खंभे हैं और ऊपर पन्द्रह गुम्बद हैं। उन पर हिलती हुई मीनारें भी थीं। सन् 1818 के भूकंप में वे टूट गईं।

हिलती हुई दो मीनारें सीदी बशीर मस्जिद में भी हैं। यह मस्जिद इन मीनारों के कारण विख्यात हो गई है। इसकी खूबी यह है कि आप एक मीनार हिलाएंगें तो

दूसरी अपने आप हिलने लगेगी। बड़ी अचरज की बात है। आज तक कोई इसकी करामात को समझ नहीं पाया है। ऐसी ही दो हिलती मीनारें राज बीबी की मस्जिद में हैं। हिलने के रहस्य की खोज करने के लिए इन दो में से एक को उतार दिया गया था, लेकिन उसके बाद भी रहस्य का पता नहीं चला। इनका निर्माण 400 से अधिक वर्ष पहले हुआ था। आज भी वे अच्छी स्थिति में हैं।

सीदी सैयद की मस्जिद सुलतान अहमद शाह के गुलाम सेवक सीदी सैयद ने बनवाई थी। इसकी खिड़कियों पर पत्थर की जालियाँ हैं। पत्थर को काटकर जो नक्काशी की गई है वह इतनी महीन है कि लगता है, जैसे पत्थर के तार से डिज़ाइन बनाया गया हो। अमरीका और इंग्लैंड के संग्रहालयों में इस जाली की प्रतिकृति
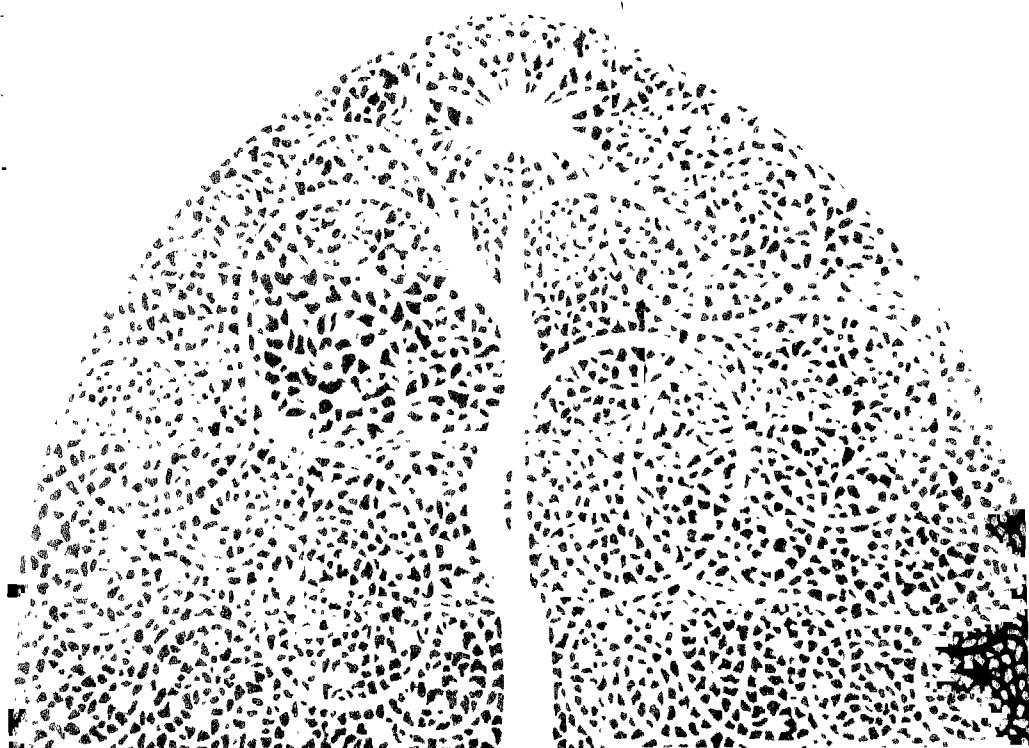
सीदी सैयद की जाली

लकड़ी से बनाकर रखी गई है। लकड़ी को कुरेदना तो फिर भी आसान है। पत्थर में इतना बारीक काम करना बहुत मुश्किल है।

अहमदाबाद में ऐसी कई मस्जिदें हैं जिनकी कोई न कोई विशेषता है। मुसलमान सुलतान महमूद बेगड़ा की एक हिंदू पत्नी थी। उसका नाम था रानी रूपमती। इस हिंदु रानी की भी एक मस्जिद है। इसमें बारह खंभों पर एक गुम्बद, ऐसे तीन गुम्बद हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में हिन्दू-मुसलमान स्थापत्य कला के मिश्रण की जो शैली पाई जाती है, उसी शैली में यह मस्जिद बनी है। इसकी भी मीनारें थीं, लेकिन सन् 1818 के भूकंप में वे ढ़ह गईं।

जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ के भाई ने संतशाह आलम का मकबरा और मस्जिद बनवाये थे। संगमरमर की नक्काशी के फ्रेम में बने पीतल के दरवाजे इस इमारत की विशेषता हैं।

अहमदाबाद शहर से बाहर निकलते ही आठ किलोमीटर की दूरी पर मुगल स्थापत्यकला का अत्यंत सुरुचिपूर्ण सादगी का उदाहरण मिलता है सरखेज में। यहाँ महमूद बेगड़ा और उसकी रानी राजाबाई के मकबरे हैं, महल हैं और संत अहमद खट्टु जंग बक्श का भी मकबरा है। साथ ही में सीढ़ियोंवाली बड़ी बावली है। इनमें से किसी भी इमारत में मेहराब ही नहीं है। सादगी की दृष्टि से ये इमारतें बेजोड़ मानी जाती हैं। गुजरात में लगभग 175 मेले ऐसे लगते हैं जो खास मुसलमान मेले या उर्स कहलाते हैं। इनमें से दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। एक शाह अहमद खट्टु जंग बक्श की मस्जिद के पास लगता है और दूसरा शाह आलम के मकबरे के पास। दोनों में काफी भीड़ होती है। लगभग पचीस हजार लोग इसमें भाग लेते हैं।

जैसा कि हमने पहले देखा, अहमदाबाद शहर सन् 1411 में बसाया गया था। उसी समय महलों के चारों ओर किलाबंदी की गई थी। इसे भद्र का किला कहते हैं। इस किले के भीतर शाही महल और नगीना बाग थे। बाद में महमूद बेगड़ा ने सारे शहर की चारों ओर किलेबंदी करवाई। मुगल राज्यपाल आज़म खान ने महल को उत्तर की ओर बढ़ाया था और जब मराठाओं ने अहमदाबाद पर कब्जा कर लिया तब महल के उत्तर के खंडों में से एक में देवी भद्रकाली का मंदिर बनाया। कैसी रोचक बात है! एक मुसलमान सुलतान महल बनाए और उसमें हिंदू मंदिर भी बन जाए। हिंदू-मुसलमान के भेद हम ही खड़े करते हैं। मन साफ हो तो कोई समस्या ही नहीं। गुजराती में एक कहावत है कि "मन चंगा तो कथरोट में गंगा"। कथरोट वह थाली

होती है जिसमें रोटी के लिए आटा तैयार किया जाता है। वह "कथरोट" तो सभी घरों में होती है, याने गंगा भी सभी घरों में पाई जाएगी, यदि मनुष्य का मन अच्छा हो।

जब मन अच्छा होता है तब हम अपने बारे में कम और दूसरों के बारे में ज्यादा सोचते हैं। गुजरात में दूसरों के बारे में सोचनेवाले लोगों ने जगह-जगह पर सीढ़ियों वाली विशाल बावलियाँ बनवाईं हैं, जिससे यात्री पानी पी सकें और कुछ देर आराम भी कर सकें। सरखेज के पास जो बावली देखी वह ऐसी ही है। "दादा हरि की बाव" भी ऐसी ही है। सुलतान महमूद बेगड़ा के दरबार में एक महिला थी जिसने यह बावड़ी बनवाई थी। गुम्बद वाले प्रवेश द्वार से बावड़ी तक पहुँचने से पहले कई सीढियाँ और खंभें हैं, पत्थर के चबूतरे हैं, सभी पर बहुत ही सुंदर नक्काशी की गई है।

नक्काशी का और एक बेजोड़ उदाहरण है सेठ हठीसिंग का जैन मंदिर। सन् 1850 में अहमदाबाद के एक बहुत ही अमीर जैन सेठ ने यह संगमरमर का मंदिर बनवाया था। पन्द्रहवे जैन तीर्थंकर धर्मनाथ की इसमें स्थापना की गई है। संगमरमर की नक्काशी देखकर संदेह होने लगता है कि यह मनुष्य के हाथों से ही बना है या किसी दैवी हाथों से!

साबरमती आश्रम

अहमदाबाद में एक और मंदिर है। यह मंदिर सादगी, सेवा और समर्पण का प्रतीक है। इसका नाम है साबरमती आश्रम। गांधी जी सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत आये थे। अफ्रीका में ही उन्होंने आश्रम का प्रारंभ कर दिया था। अब भारत में भी वे ऐसा आश्रम बनाना चाहते थे, जहाँ लोग एक साथ रहकर, संयमपूर्ण जीवन जीकर देश की सेवा कर सके। पूरा भारत घूमने के बाद गांधी जी ने अहमदाबाद को पसंद किया। अहमदाबाद के उपनगर कोचरब में एक बंगला था, उसी में गांधी जी एवं उनके साथ दक्षिण अफ्रीका से आये हुए लगभग बीस व्यक्ति रहने लगे। आश्रम के समूह जीवन की बात सुनकर और भी लोग इस अभिनव प्रयोग में शामिल होने आ गये। अब बंगला छोटा पड़ गया। उसी समय कोचरब में प्लेग की बीमारी फैल गई। आश्रम इससे शायद अछूता न रह पाय ऐसा डर भी था। इसलिए अब नई जगह ढूंढनी थी।

अहमदाबाद शहर से सात किलोमीटर दूर साबरमती जेल के पास का स्थान गांधी जी को पसंद आ गया। इस ज़मीन पर न कोई मकान था, न पेड़। उसकी एक ओर जेल थी तो दूसरी ओर श्मशान। अब आश्रमवासियों का काम शुरू हो गया। फावड़े और खुरपी लेकर ज़मीन साफ की, तंबू डाले और रहने लगे। लेकिन इस प्रकार के आयोजन में कई कठिनाइयाँ महसूस हुईं। पक्का मकान बनाने की बहुत ही आवश्यकता थी। आखिर शहर के मिल मज़दूरों को उनकी हड़ताल के दौरान कुछ काम देने के लिए गांधी जी ने उन्हीं को लगाकर एक बड़ा मकान बनवा लिया। बाद में कई पक्के मकान बने।

इनमें से एक है ''हृदयकुंज''। यह गांधी जी की कुटिया है। उनकी वस्तुएँ आज भी वहाँ रखी गई हैं। 1918 से 1930 तक गांधी जी ''हृदयकुंज'' में रहे थे। 1930 में यहीं से गांधी जी दांडी जाने के लिए निकले थे। उस समय उन्होंने संकल्प किया था कि वे स्वराज लिये बिना इस आश्रम में नहीं लौटेंगे।

आश्रम में सभी लोग एक साथ रहते थे। प्रार्थना, सफाई-काम, कातना, बुनना, खेती, गोपालन इत्यादि आश्रम की दिनचर्या के मुख्य अंग थे। आश्रम के ग्यारह व्रत थे जो नीचे दी गई पंक्तियों में बताये गये हैं:

सत्य, अहिंसा, चोरी न करना,
बिन उपयोगी का संग्रह न करना,
ब्रह्मचर्य और जात-मेहनत,
किसी के छूने से अस्पृश्य न होना,
अभय, स्वदेशी, स्वाद न करना,
सर्वधर्मों को समान समझना,
इन ग्यारह को महाव्रत मानकर
नम्रता व दृढ़ता से आचरन।

कितनी सुंदर बात है! यह बात जीवन को कितना निर्मल और उपयोगी बना देती हैं।

साबरमती आश्रम में पुस्तकालय है, संग्रहालय भी है और गांधीजी के जीवन एवं कार्य पर आधारित ध्वनि-आलोक का एक कार्यक्रम भी दिखाया जाता है। यहीं ठहर जाना हो तो अतिथिगृह का प्रबंध भी है। यहाँ पौष्टिक स्वादिष्ट शाकाहारी

भोजन मिल जाता है। ऐसे शांत, स्वच्छ वातावरण में मनको अजीब-सी शांति मिलती है। स्वदेश प्रेम भी प्रबल हो जाता है।

कपड़ा उद्योग

इस शांत वातावरण से फिर शहर के कोलाहल की ओर जाना होगा क्योंकि अहमदाबाद की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात पीछे छूट गई है। वह है कपड़ा मिलें।

अहमदाबाद में कपड़ों के उत्पादन का उद्योग इतना अधिक है कि यह शहर भारत का "मान्चस्टर" कहलाता है। मुगल शासन के समय से अहमदाबाद में बना हुआ साटिन, मखमल, मशरू और कमख्वाब विदेशों में बेचा जाता था। सूत, रेशम और जरी के धागों का खूब उत्पादन होता था। तभी से अहमदाबाद काफी समृद्ध शहर है। सन् 1859 में अहमदाबाद में पहली कपड़ा मिल शुरू हुई। आज तो देश के कपड़ों के कुल उत्पादन का पचीस प्रतिशत केवल इस शहर में होता है।

वस्त्रों की विविधता देखनी हो तो केलिको संग्रहालय को देखना ही चाहिए। सत्रहवी शताब्दी से लेकर आज तक के भारतभर के कपड़ों के अत्यंत सुंदर और विरल नमूने इस संग्रहालय में संग्रहित हैं। भारतीय कपड़ों का तकनीक और इतिहास, दोनों की जानकारी यहाँ मिलती है।

उद्योग, शिक्षा और संस्कृति इन तीनों क्षेत्रों में अहमदाबाद बहुत विकसित शहर है। गांधीजी द्वारा शुरू की गई गुजरात विद्यापीठ है, गुजरात विश्वविद्यालय तो है ही, फिर सांस्कृतिक विद्या मंदिर और संस्कार केन्द्र हैं, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ डिजाइन है, इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला है, उपग्रह स्टेशन भी अहमदाबाद में ही है।

पहले तो गुजरात की राजधानी भी यहीं हुआ करती थी। अब यह 32 किलोमीटर दूर गांधीनगर में है।

□□

10

[illegible] के आसपास

गांधीनगर में सिवा सरकारी मकानों के खास कुछ नहीं है। लेकिन हम उस दिशा में जाएँगे "अडालज बाव" देखने। अहमदाबाद से 19 किलोमीटर की दूरी पर यह अत्यंत सुंदर बावली सन् 1499 में रानी रुड़ाबाई ने बनवाई थी। पानी तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। दीवार और खंभों पर पक्षी, मछलियाँ, फूल-पत्ते एवं अन्य सुशोभनों की नक्काशी की गई है। पत्थर के पक्षी ऐसे सुंदर हैं मानों अभी पंख फैलाएँगें।

पत्थर के पक्षियों को सजीव रूप में देखना हो तो नल सरोवर चलना होगा। यह स्थान अहमदाबाद से लगभग 65 किलोमीटर दूर हैं। सरोवर बहुत ही विशाल है, पर अधिक गहरा नहीं है। वर्षाऋतु के पानी से वह भर जाता है, गर्मियों में फिर सूख जाता है। नवंबर से फरवरी तक यहाँ तरह-तरह के पक्षी आते हैं और काफी दूर-दूर से, उत्तर में उत्तर ध्रुव से और दक्षिण में आस्ट्रेलिया से भी आते हैं। गुलाबी जलसिह (रोज़-पेलिकन) हंसावर (फ्लेमिंगो), सफेद लकलक (स्टोक) क्रौंच, सारस, सुरखाब, बतख, बगुला इत्यादि कई पक्षियों का मेला लगता है। इसे पक्षियों का अभयारण्य कहते हैं। शिकार मना है। पक्षियों के बीच जाकर कुछ दिन रहना हो तो उसका भी प्रबंध है। लगभग नब्बे लोग रह सके इतने कमरे वहाँ बने हैं।

सरोवर के बीच में हिगलन और भुरेख नामकी देवियों के मंदिर बनें हैं। पक्षियों का ऐसा ही एक मेला कच्छ में भी है, पर जब हम कच्छ पहुँचेंगे तब ही

उसको देख सकेंगे। इस समय तो चलते हैं लोथल। प्रकृति से प्राचीन इतिहास की ओर सरोवर से समृद्ध संस्कृति की ओर।

लोथल

आज से लगभग बीस साल पहले अहमदाबाद से कोई नब्बे किलोमीटर की दूरी पर सरगवाला नामके एक गाँव में अद्‌भुत चीज़ पाई गई। जमीन को खोदने पर भीतर से पूरी नगरी निकल आई। यह संस्कृति हड़प्पा और मोहन जो-दड़ो की संस्कृति के समय की, अर्थात ईसा पूर्व दो सहस्राब्दी (मिलेनियम) की है। इससे पता चलता है कि हड़प्पा की संस्कृति गुजरात से खंभात तक फैली हुई थी। आज यह स्थान लोथल के नाम से प्रसिद्ध है।

सदियों पुरानी नगरी - लोथाल
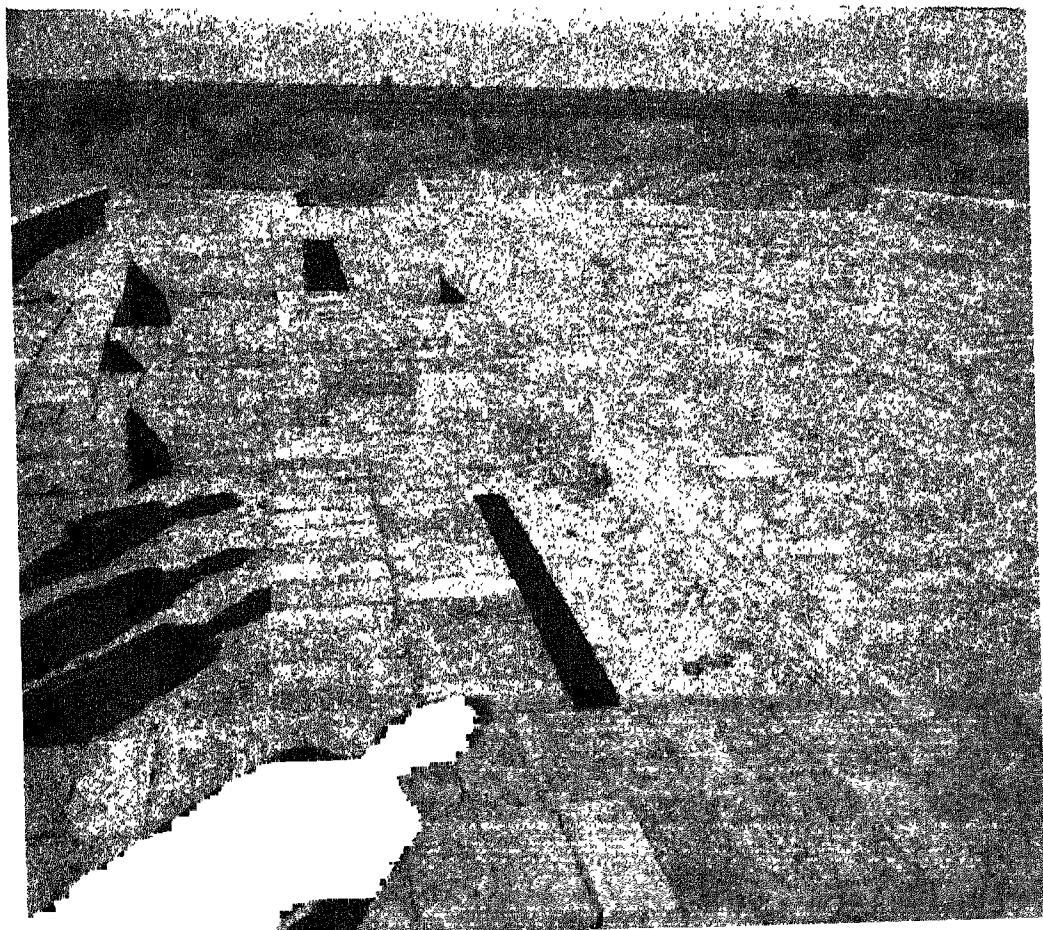
सरगवाला गाँव में लोथल नामका एक टीला है। गुजराती में लोथल शब्द "लोथ" से आया है। "लोथ" याने मृत। लोथल का अर्थ भी कुछ अंश से मोहन-जो-दड़ो जैसा ही हुआ। सिंधी शब्द दड़ो का अर्थ है टीला।

यहाँ जब पूरी नगरी ही बसी हुई थी तब तो मनुष्यों को रहने के लिए जो सुविधाएँ चाहिए वह सारी होनी चाहिए। आइए, कुछ समय के लिए अतीत में घुस जाते हैं। इतिहास के पन्नों को फिर से जीवित कर देते हैं। हज़ारों वर्षों पहले जिन लोगों ने यहाँ आखरी सांस ली थी, उनके रहनसहन को देख लेते हैं।

लोथल में एक बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि यह व्यापार का बड़ा केन्द्र रहा होगा। हड़प्पा के लोग भी यहाँ इसी कारण आ पहुँचे होंगे। सौराष्ट्र के मध्य से भोगवो नदी निकलती है और लोथल टीले के बीच से गुज़रती हुई साबरमती नदी से जा मिलती है। साबरमती नदी अरब सागर से मिल जाती है। इस प्रकार लोथल से समुद्री रास्ते तक पहुँचकर दूसरे देश से व्यापार करना संभव था। इसका और एक प्रमाण मिल जाता है लोथल के मालगोदाम से। सूरज की धूप में पकाई गई ईंटों से यह गोदाम बना है। काफी बड़ा है—140′ × 135′। दूसरा सबूत मिलता है तरह-तरह की मोहरों से। महत्त्वपूर्ण व्यवसाय केन्द्रों में ही इतनी सारी मोहरों का प्रयोग होता है। यहाँ का गोदीबाड़ा भी बड़ा प्रभावशाली है। यह भी ईंट से बनी 710′ × 116′ की बड़ी इमारत है। कहा जाता है कि लोथल का गोदीबाड़ा सारे संसार के गोदीबाड़ों में सबसे पहले बना था। नाविकों द्वारा प्रयोग में लाये गये पत्थर के लंगर भी यहाँ पाये गये हैं।

लोथल से जो औजार मिले हैं वे सारे किसी-न-किसी वस्तु के बनने के लिए प्रयोग में लिए जाने वाले औजार हैं। युद्ध के या किसी को मारने के कोई औजार नहीं मिले हैं। इस से हम कह सकते हैं कि वहाँ की प्रजा बड़ी शांतिप्रिय थी। गुजराती प्रजा आज भी शांतिप्रिय मानी जाती है।

शांतिप्रिय प्रजा को ही कलाकारीगीरी के लिए समय मिलता है। लोथल से देवी की आकृति की, बैल, कुत्ते, शेर, मोर, रीछ इत्यादि की मिट्टी से बनी सुंदर मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। मोहर के ऊपर भी हाथी, एकश्रृंगी, बकरी या पक्षी की आकृतियाँ बनी हैं। बर्तनों पर भी सुंदर चित्र पाये गये हैं।

कुछ वेदियाँ पाई गईं हैं जिन पर पशुओं की बलि चढ़ाई जाती थी और कुछ ऐसी कब्रें भी मिली हैं जिनमें एक साथ दो व्यक्तियों को दफनाया गया है।

इसके अतिरिक्त गलियाँ, बाज़ार, चौड़े रास्ते, स्नानघर, मोरियाँ इत्यादि हैं। कल्पना कर लीजिए कि आज जो मकान और रास्ते शांत हैं, जो गोदाम खाली हैं, जो दीवारें खंडहर हो चुकी हैं, सालों पहले उनमें भी हमारे दिल की तरह जीवन की धड़कन थी, वे भी सांस लेती थीं। उनकी रगों में भी खून दौड़ता था और उसकी गलियों में भी जीवन की चहल-पहल रहा करती थी। गलियों में मानव थे।

और अब? कारवाँ गुज़र गया। हवा में उड़ी हुई धूल भी धरती पर शांत होकर जम गई, मानो समय थम गया, धरती की कई परतों के नीचे।

□□

11
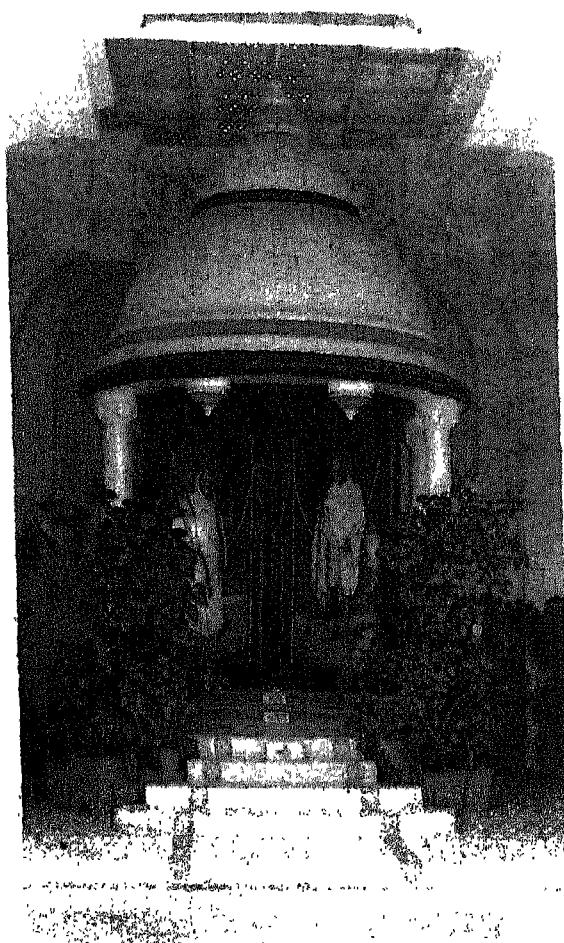
सौराष्ट्र की ओर

पीछे से बस की भोंपू-भोंपू सुनाई दी। हम लोथल की अतीत से वर्तमान में आ गये। भोंपू की आवाज़ के साथ वह जीप याद आ गई जिसमें बाबुल और नीतु सफर कर रहे हैं।

हमने गुजरात के इस भाग में बहुत कुछ देखा। छोटी-छोटी जगहें भी बड़े आराम से, गौर से देखीं। यहाँ कई दिन लगा दिये। बाबुल-नीतु वाली जीप तो शायद कच्छ पहुँच गई होगी। सौराष्ट्र की यात्रा भी हमें अपने आप बसों और बैलगाड़ियों से करनी पड़ेगी।

सौराष्ट्र बड़ा रंगीन इलाका है। लोक-साहित्य और लोककला में बहुत ही समृद्ध है। लोगों में एक प्रकार की मस्ती है। भोलापन भी है। रास-गरबा-भजन तो मानों लोगों की सांसों में है, सौराष्ट्र की हवा और पानी में है।

अहमदाबाद से सौराष्ट्र आते समय पहला जिला आता है सुरेन्द्र नगर का। इस जिले में तरणेतर नामक एक गाँव है। यहाँ भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चौथी, पाँचवी और छठी तिथियों को बहुत बड़ा मेला लगता है। भाद्रपद याने अगस्त-सितंबर के महीने। तरणेतर में भगवान शिव का मंदिर है। इस गाँव का नाम त्रिनेश्वर था। शिव के तीन नेत्र माने जाते हैं ना? फिर त्रिनेश्वर से तरणेतर हो गया। इस मेले में भरवाड़ और रबारी कौम के लोग खास हिस्सा लेते हैं। उनके वस्त्रों पर की गई कढ़ाई और पुरुष तथा महिलाओं की देह पर चांदी के आभूषण देखकर आप दंग रह
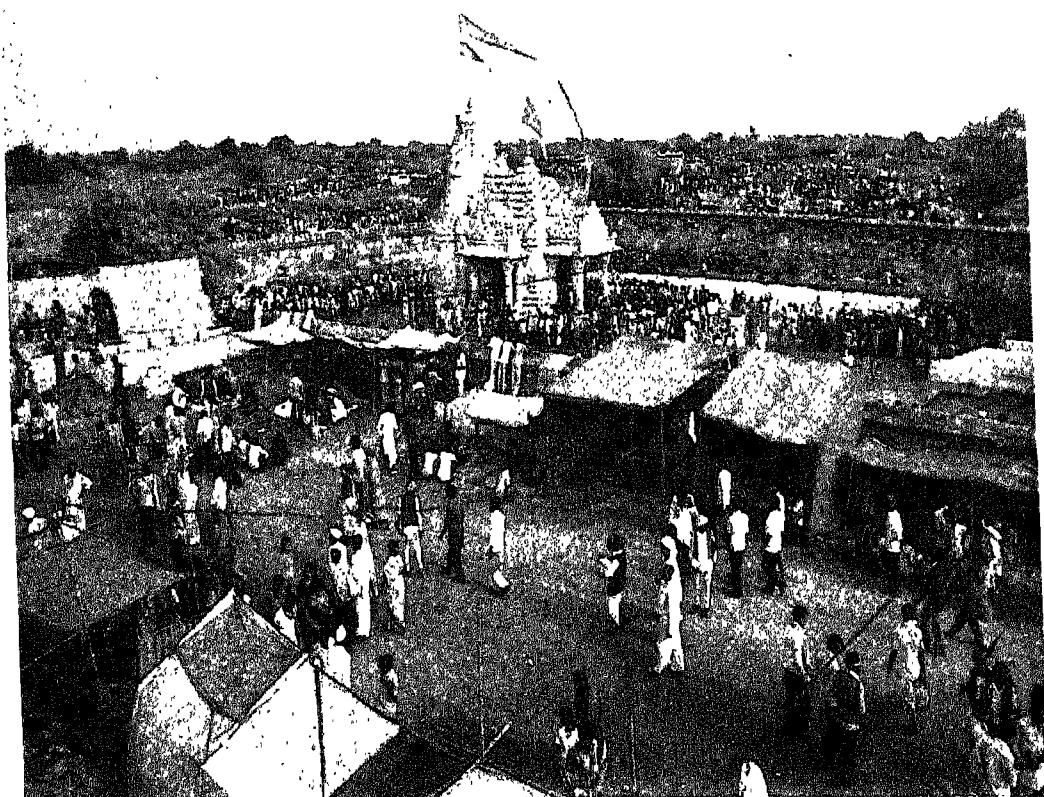
तरणेतर का मेला

जाएँगे। सारे सौराष्ट्र से हजारों ग्रामवासी इस मेले में आते हैं। ढोल और "जोड़िया पावा" (अलगोजा याने दो बांसुरियाँ) के साथ बड़ी मस्ती से रास-गरबा होते हैं। रास को रासड़ा भी कहते हैं। रासड़ा करने वालों के हाथ में छोटी-छोटी लकड़ियाँ होती हैं। इन लकड़ियों को "डांडिया" कहते हैं। सैंकड़ों महिलाएँ बहुत बड़ा वर्तुल बनाकर घंटों भर डांडिया-रास खेलती रहती हैं। मेले के अन्य आकर्षण तो होते ही हैं। आजकल तो केवल शहरों से ही नहीं, भारतदर्शन के लिए आये हुए विदेशी लोग भी इस मेले में शामिल हो जाते हैं।

भारत की आत्मा तो गाँवों में ही है ना? ऐसे मेलों से पता चलता है कि लोग मूलतः कितने सहज, स्वाभाविक और आनंदप्रिय होते हैं। उनपर थोपी गई कृत्रिमता उन्हें बिगाड़ देती है।

□□

12

भावनगर

लोकजीवन की रक्षा करना हमारे ही हाथ में हैं। इस कार्य में जागरूकता का महत्त्व स्वीकारना होगा। तरणेतर से दक्षिण की ओर चलते हैं।

यह है वलभीपुर। पाँचवी शताब्दी में गुप्ता राजवंश का पतन होने लगा था। उस समय उनके सेनापति भट्टारक ने सौराष्ट्र को अपने हाथ में ले लिया। वलभीपुर को राजधानी बना लिया। भट्टारक मैत्रक वंश का था। ये लोग बड़े शक्तिशाली थे। इन्होंने गुजरात और मालवा के कई भागों पर अपना वर्चस्व जमा दिया था। यहाँ विश्वविद्यालय की स्थापना भी की गई थी, लेकिन जब अरबों के हमले हुए तब उसका नाश हो गया।

सौराष्ट्र में कई छोटे-छोटे राज्य थे। उनमें से एक था राजा भावसिंहजी का भावनगर। सन् 1723 में यह शहर बसा था। तभी से एक बंदरगाह के रूप में इसका विकास होता रहा था। दो स्टीमर एक साथ खड़े रह सकें इतनी बड़ी इसकी गोदी है। यहाँ ''लाक-गेट'' बनाये गये हैं, जिसके कारण समुद्र में भाटा हो तब भी इसमें जहाज तैरते रहते हैं। गुजरात में इस प्रकार का यह पहला ''लाक-गेट'' है।

भावनगर में सौराष्ट्र विश्वविद्यालय है, केन्द्रीय नमक और समुद्री अनुसंधान इंस्टिट्यूट भी है। दांडी में नमक के सत्याग्रह की बात करते समय हमने यह तो जान ही लिया था कि भारत में नमक का कुल जितना उत्पादन होता है उसका 60 प्रतिशत गुजरात में होता है।

गांधी जी की स्मृति में यहाँ एक पुस्तकालय और संग्रहालय है, जिसका नाम ही गांधी-स्मृति है। 1888 में गांधी जी भावनगर के शामलदास कालेज में विद्यार्थी थे। इस पुस्तकालय में गांधीजी के जीवन व विचार से संबंधित लगभग चालीस हज़ार पुस्तकें हैं।

एक टीले पर तख्तेश्वर मंदिर है। यहाँ से सारा भावनगर दिखाई देता है।

□□

13

पालीताणा

मंदिर की बात होते ही पालीताणा याद आ जाता है। गुजरात के दर्शनीय स्थानों में पालीताणा एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। भावनगर से यह 56 किलोमीटर दूर है। वहाँ से कई बसें इस ओर जाती हैं। हम भी एक बस में बैठ जाएँ। डेढ़ घंटे में पालीताणा पहुँच जाएँगें।

पालीताणा पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। यहाँ के सरकारी अतिथिगृह में रात बिता लेते हैं। अच्छा शाकाहारी भोजन भी मिल जाएगा। सुबह सूर्योदय से पहले उठकर शत्रुंजय पर्वत चढ़ना शुरू करेंगे। इस पर्वत के ऊपर जैन मंदिरों की एक नगरी बसी हुई है। कुल मिलाकर 863 मंदिर हैं।

600 मीटर ऊंचे इस शत्रुंजय पर्वत पर चढ़ने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। वृद्ध, बीमार या कमजोर लोग डोली या कुर्सी के सहारे ऊपर जाते हैं। इनको उठाने वाले लोग किराये पर मिल जाते हैं।

हमने तो सीढ़ियों से चढ़ना पसंद किया। सीढ़ियाँ यदि सीधी चढ़ें तो सांस फूल जाती हैं, लेकिन बाँयें से दाँयें से फिर बाँयें, इस तरह तिरछे चढ़ते रहते तो कोई तकलीफ नहीं होती है। हम भी तिरछे चढ़ रहे हैं। आराम से, आपस में बातें करते हुए, आसपास का सौंदर्य देखते हुए चढ़ते जा रहे हैं। आधे रास्ते पहुँचकर हम सीढ़ी के किनारे के पत्थर पर बैठ गये। यहाँ से शत्रुंजी नदी कितनी सुंदर दिखती है! यह गिरनार पर्वत से निकलती है और शत्रुंजय पर्वत को छूती हुई आगे चली जाती
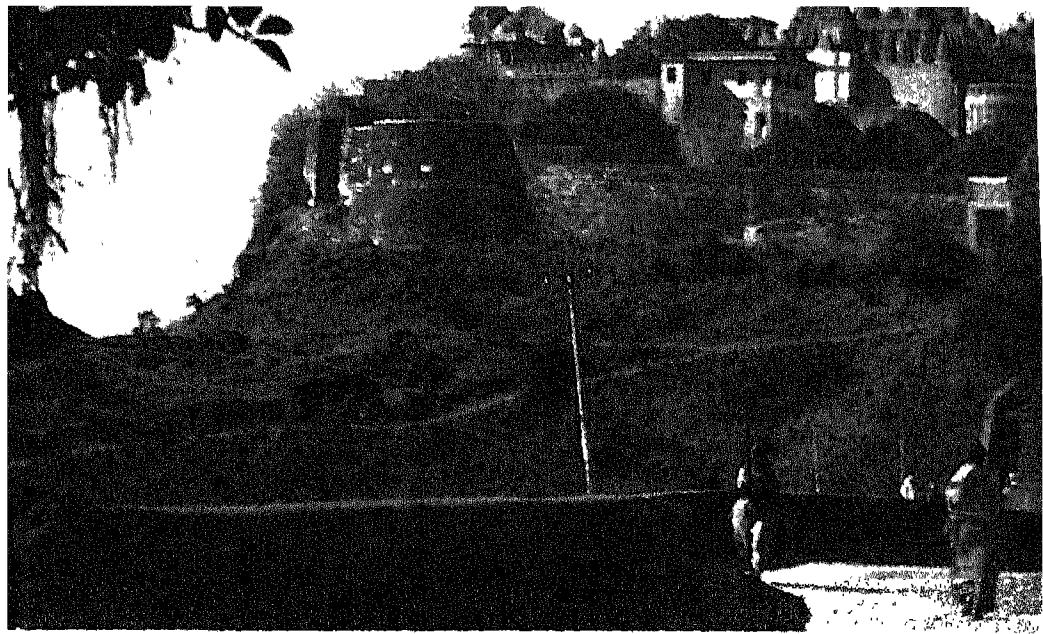
पालीताणा के मंदिर

है। लेकिन यह शत्रुंजी क्यों कहलाती है? इस प्रश्न का उत्तर कोई नहीं दे पाता है। खैर, छोड़िये इसे। तर्कबाजी में पड़ेंगें तो ऊपर पहुँचने में देर हो जाएगी।

यह लीजिए, आ गये। ऊपर चढ़ने में एक घंटे से ज्यादा ही समय लग गया। खाकर निकले थे फिर भी भूख लग गई। यहाँ ये महिलाएँ मिट्टी के बर्तनों में क्या बेच रही हैं? यह तो दही है। हम भी इसे खरीद लें। अहाहाहा..... कितना स्वादिष्ट दही है और कितना गाढा है। किसी ने हँसकर कहा: "अरे भाई, छुरी से काटना पड़े इतना सख्त है।" वास्तव में बहुत ही अच्छा दही है।

इस प्रदेश में भैंस का दूध मिलता है। यहाँ रबारी, मेर, आहिर, ऐसी कई कौमें हैं जिनका व्यवसाय पशुपालन है। इन महिलाओं का ही स्वास्थ्य देखो। त्वचा चमक रही है। चेहरा कितना स्वस्थ और खुश दिखता है।

इस तरफ कुछ धर्मशालाएँ हैं। सरकारी अतिथिगृह भी हैं और उस तरफ मंदिर ही मंदिर। पिछले 900 वर्षों में ये सारे मंदिर बने हैं। प्रत्येक श्रद्धालु यात्री की यही मनोकामना रहती है कि 'मेरे पास कुछ पैसे जुट जाय तो मैं भी यहाँ एक मंदिर बनवा दूँ।'

प्रथम जैन तीर्थंकर श्री आदीश्वर का मंदिर सबसे बड़ा माना जाता है। यहाँ एक चौमुख नामका मंदिर है। इस मंदिर में आदिनाथ की मूर्ति के चार दिशाओं में

चार मुख हैं। चारों ओर चार द्वार भी हैं। इनके अलावा कुमारपाल, विमल शाह और संप्रीतिराज को समर्पित मंदिर भी बहुत सुंदर है। संगमरमर के मंदिरों में संगमरमर की मूर्तियाँ हैं। बहुत ही बारीक नक्काशी की गई है। जैन स्थापत्यकला का यह अद्भुत उदाहरण है। मंदिरों में मूल्यवान रत्नों का भी बड़ा संग्रह है। इन रत्नों को देखने के लिए यहाँ के प्रबंधक या इन्सपेक्टर साहब से खास अनुमति लेनी पड़ेगी या फिर जब दिन में इनको मूर्तियों पर चढ़ाने की विधि हो रही हो, उसी समय उन्हें देख लेंगें।

यहाँ घूमते पैर थक जाएँगे लेकिन मन तृप्त नहीं होगा। आराम करने के लिए धर्मशालाएँ हैं, लेकिन इनमें रात को ठहर नहीं सकते। यह तो देवों की नगरी है। रात को कोई भी मनुष्य शत्रुंजय पहाड़ी की इस देवनगरी में नहीं रह सकता। सूरज ढलते ही सारे लोग नीचे उतर जाते हैं यहाँ तक कि मंदिर के पुजारी भी।

हम भी नीचे उतर जाएँगे। लेकिन उतरने से पहले आदीश्वर मंदिर के पास अंगार पीर की दरगाह है, उसके दर्शन कर लें। दरगाह में इतने सारे खिलौने क्यों हैं? सभी खिलौने छोटे बच्चे को झुलानेवाले पालने के हैं। बात यह है कि अंगार पीर की बड़ी महिमा मानी जाती है। जिन स्त्रियों को बच्चे चाहिए वे यहाँ आकर दरगाह पर छोटा-सा पालना रखकर मन्नत मानती हैं।

ऐसी अंधश्रद्धा मनुष्य के भोलेपन का ही उदाहरण है। दूसरे तरीके से देखें तो हम यह भी कह सकते हैं कि ऐसी आशाओं के सहारे ही तो मनुष्य अपने दुख को भुलाकर जी लेता है। दुख आ पड़ता है तो ईश्वर को कोसता है और सुख मिले तब ईश्वर याद नहीं आता। उस समय तो वह अपनी बुद्धि की दाद देता है। कैसी विचित्र बात है यह।

भावनगर जिले में और भी कुछ धार्मिक स्थान हैं। तलाजा की पहाड़ी पर प्राचीन बौद्ध गुफाएँ और जैन मंदिर हैं। संतकवि नरसिंह मेहता का जन्म यहीं हुआ था। सोनगढ़ में भी जैन मंदिर है। गढ़ड़ा में स्वामी सहजानंद की गादी है। स्वामी सहजानंद का जन्म सन् 1781 में हुआ था। उनका संप्रदाय स्वामी नारायण संप्रदाय कहलाता है। गुजरात में ऐसी कई पिछड़ी हुई जातियाँ थीं जो शराब पीती थीं, बहुत ही अस्वच्छ वातावरण में रहती थी। उनका जीवन दयनीय था। सहजानंद स्वामी ने उनको बुरी आदतों से मुक्ति पाने का रास्ता दिखाया। स्वच्छता सिखाई दैनंदिन

जीवन के कुछ विशेष आचरण सिखाए। इस प्रकार पिछड़े हुए लोगों के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया।

□□

14
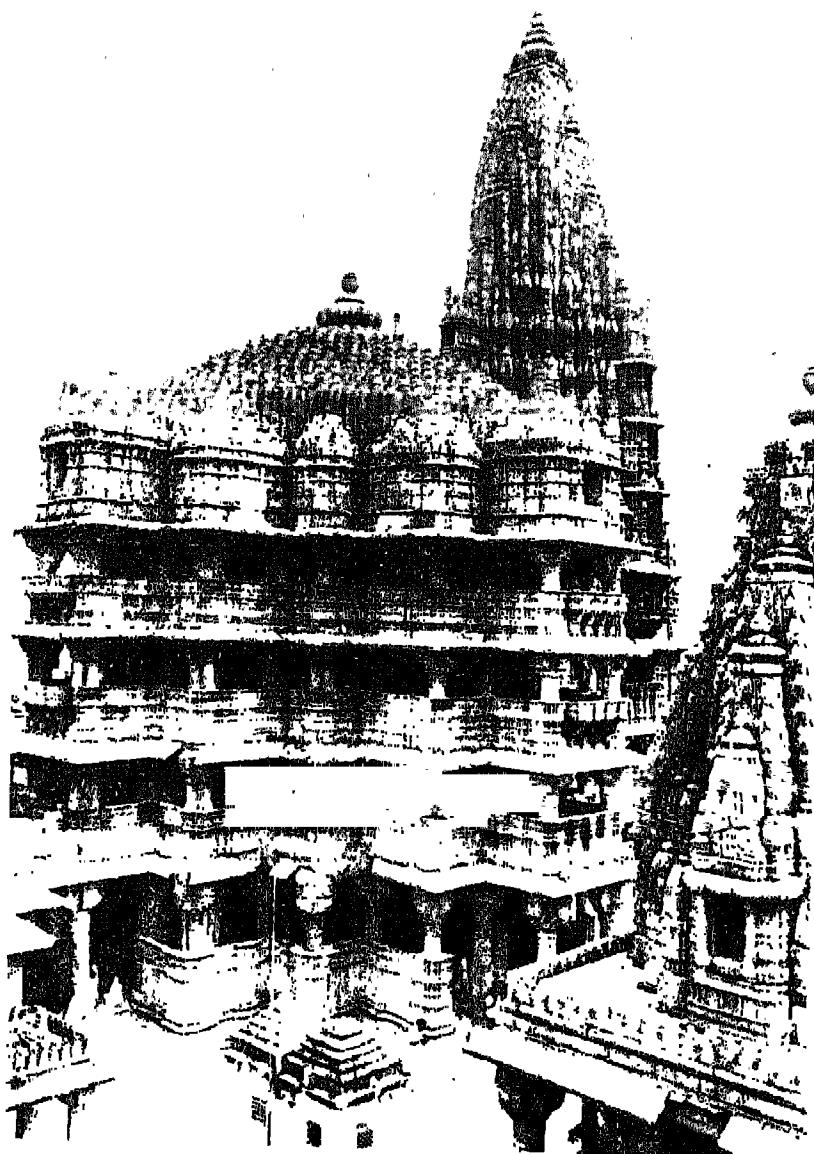
राजकोट

सहजानंद स्वामी की तरह गुजरात में और एक संत पैदा हुए, जिनका नाम है स्वामी दयानंद सरस्वती। राजकोट जिले के टंकारा गाँव में सन् 1824 में उनका जन्म हुआ था। उनका असली नाम था मूलशंकर। उनके ब्राह्मण पिता बड़े ही धर्मान्ध शिवभक्त थे। एक बार शिवरात्रि के दिन टंकारा के शिवमंदिर में बालक मूलशंकर बैठे थे। उन्होंने देखा कि चारों ओर चूहे दौड़ रहे हैं। शिवलिंग पर भी चूहे खेल रहे हैं। तब उनके मन में विचार आया कि यह कैसे भगवान हैं जो चूहों से अपनी रक्षा तक नहीं कर सकते हैं! तभी से उनके मन में मूर्तिपूजा के प्रति संदेह जागा। वह दृढ़ हुआ जब उनकी बहन की मृत्यु हुई। वे जीवन का रहस्य जानना चाहते थे। ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। वे घर छोड़कर चले गये। गुरु परमानन्द सरस्वती के शिष्य बन गये। तब से उनका नाम दयानंद सरस्वती रखा गया।

उन्होंने वेद-उपनिषद् पढ़े, दर्शनशास्त्र पढ़े और जीवन की एक नई दिशा उन्हें प्राप्त हुई। समाज की कुरीतियों का उन्होंने विरोध किया। विधवाओं के पुनर्विवाह की और बालविवाह पर प्रतिबंध की बातें की। संक्षेप में कहें तो समाज को सुधारने का एक आंदोलन शुरू कर दिया। आज इनका संप्रदाय आर्य समाज के नाम से प्रचलित है।

समाजसुधार के क्षेत्र में राजकोट का भी काफी योगदान है। इसका कारण है गांधीजी का राजकोट से संबंध।

जाडेजा राजपूत शासक कुंवर विभोजी ने सोलहवीं शताब्दी में राजकोट नगरी

बसाई थी। इसके बाद लगभग दो सौ वर्षों तक कभी यह प्रदेश जाडेजाओं के हाथ में रहा तो कभी मुगल फौजदारों के हाथ में। फिर सन् 1808 में ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल वॉकर ने यहाँ अपना स्थायी उपनिवेश (सेटलमैन्ट) बनाया। जाडेजा का राज भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक चला। बाद में वे भी सौराष्ट्र संघ में जुड़ गये।

गांधीजी के पिताजी करमचंद गाधी जब राजकोट के दीवान बने तब उनके साथ उनका पूरा परिवार राजकोट आया। नन्हा मोहनदास राजकोट के आल्फ्रेड हाई स्कूल में पढ़ने लगा। स्कूल की सारी शिक्षा यहीं हुई। आज इस स्कूल का नाम मोहनदास करमचंद गांधी हाई स्कूल है।

राजकोट में ही मोहनदास का कस्तूरबा से विवाह हुआ था। जिस मकान में गांधी परिवार रहता था उसका नाम है "कबा गांधीनो डेलो" और वह गली, जिसमें मकान है "कबा गांधीनी शेरी" कहलाती है। कबा गांधीनो डेलो अब गांधी संग्रहालय बन गया है।

राजकोट में सन् 1921 में "राष्ट्रीय शाला" की स्थापना की गई थी। बाद में इसे राष्ट्रीय शैक्षिक संस्था बना दिया गया था। यहाँ खादी तैयार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह वही संस्था है जहाँ सन् 1939 में राजकोट सत्याग्रह के दौरान गांधीजी ने आमरण अनशन किया था।

राष्ट्रीय शाला में एक नज़र डालते हुए हम जुबिली गार्डन की ओर चले जाएँगे।

राष्ट्रीय शाला के इस विशाल खंड में कितनी सारी बालिकाएँ चरखा चला रही हैं! लगता है जैसे सभी ध्यानमग्न हैं। एक हाथ नीचे के पहिये को चलाता है और दूसरा ऊपर उठता है। रुई से पतला सूत निकल रहा है। गांधीजी के आश्रम में तो चरखा चलाना अनिवार्य था। एक दिन में किसने कितना सूत काता उसका हिसाब रहता था। आज के यंत्रयुग में भी इन बालिकाओं को सूत कातते देखकर अच्छा लग रहा है। मानो योगाभ्यास हो रहा हो।

इधर जुबिली गार्डन में पुस्तकालय, संग्रहालय और प्रेक्षागृह है। भावनगर में हमने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय देखा था। वह शाखा थी। उसका मुख्य स्थान है राजकोट में। राजकोट में और भी कई कालेज हैं और शिक्षा का क्षेत्र काफी विकसित है।

राजकोट जिले में मोरबी का बंधेज मशहूर है। वांकानेर का राजमहल भी देखनेलायक है। इस राजमहल में अब यात्रियों के लिए होटल बना दिया गया है। गोंडल शहर की लालमिर्च प्रसिद्ध है। उसे अचार में डालो तो सालभर अचार का रंग लाल रहेगा और मुँह में आग लगेगी, वह अलग।

□□

15

जूनागढ़

अब हम अमरैली को पार करके चलेंगे जूनागढ़ जिले में। यहाँ पर तो वह सासण-गिर का जंगल है, वही, बाबुल-नीतु वाला।

यह है जूनागढ़ शहर। गुजराती भाषा में "जूना" का अर्थ है पुराना और गढ़ याने किला। शहर की चारों ओर किला बंदी है, जो काफी पुरानी है, इसी लिए इस शहर का नाम जूनागढ़ है।

जूनागढ़ के विख्यात होने के दो कारण है। एक गिरनार पर्वत और दूसरा संत कवि नरसिंह मेहता। तो पहले गिरनार हो आते हैं, बाद में नरसिंह मेहता के बारे में जानेंगे।

यह पर्वत तो बहुत बड़ा दिख रहा है। गुजरात का सबसे ऊँचा पर्वत गिरनार ही है। इसकी ऊँचाई 600 मीटर से भी अधिक है। ऊपर जाने के लिए पत्थर की जो सीढ़ियाँ बनी हैं वे भी काफी सीधी हैं। शत्रुंजय पर्वत की तरह यहाँ भी वृद्ध, बीमार या कमजोर लोगों के लिए डोली और कुर्सी का प्रबंध हैं। हम तो अभी ताकतवर हैं, उम्र में छोटे हैं, इसलिए फुर्ती भी काफी है। हम तो सीढ़ियों के रास्ते ही ऊपर जाएँगे। सुना है, लगभग 2,000 सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ेंगी। कोई बात नहीं। एक गुजराती कवि ने कहा है कि "याहोम करीने पड़ो, फतेह छे आगे"। "याहोम" कहके कूद पड़ो, आगे सफलता ही मिलेगी।

प्रारंभ में जो बावड़ी दिखती है वह है दामोदर कुंड। वहीं से ज़रा आगे चले तो
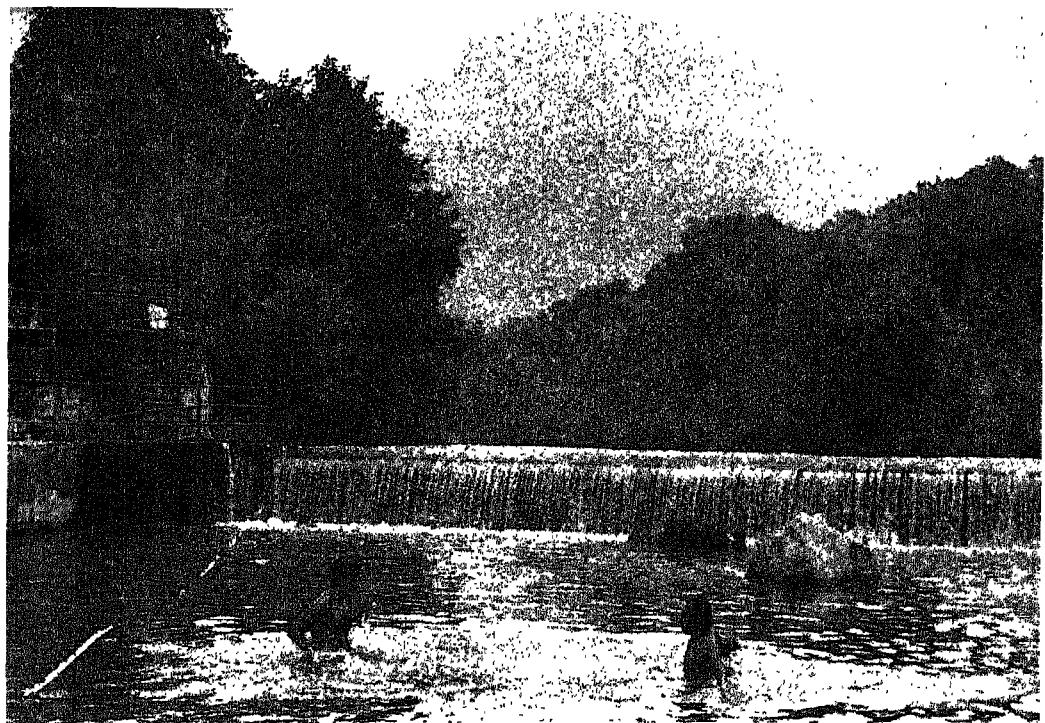
गिरनार पर्वत

आ गये शिलालेख। हमने इतिहास में पढ़ा है कि इस्वीसन् पूर्व 250 में राजा अशोक ने कलिंग युद्ध में मानवसंहार देखकर अपने हथियार फेंक दिये थे। बौद्ध धर्म अपनाकर अहिंसा का प्रचार शुरू किया था। प्रचार का एक माध्यम था शिलालेख। जगह-जगह पर पत्थरों पर गौतम बुद्ध के विचार और अहिंसा के संदेश कुरेदे गये थे। ऐसे ही चौदह शिलालेख इस गिरनार पर हैं, जो राजा अशोक ने पालि भाषा में लिखवाये थे। उन दिनों आम जनता की भाषा पालि थी।

उसके बाद सन् 150 में राजा रूद्रदमन ने और मौर्यवंश के राजा स्कंदगुप्त ने सन् 454 में इसी टीले पर संस्कृत में संदेश लिखवाये थे।

ऐसी वस्तुएँ देखने से हम समझ पाते हैं कि जीवन को सुख और शांतिमय बनाने के लिए हमारे देश में कितने लोगों ने कितना कुछ किया है। इतनी मूल्यवान बातों को हमें भुलाना नहीं चाहिए। आगे चलें।

यह है "ऊपरकोट", अर्थात् ऊपर का किला। प्राचीन काल में इस किले को पार करना बहुत ही कठिन था। इसकी दीवारें कहीं-कहीं तो बीस मीटर ऊँची हैं। उसके नक्काशीदार दरवाजे अब तो खंडहर की हालत में हैं। किले के भीतर मध्ययुग के राजपूत राजा का महल है। एक मस्जिद है, दो कुएँ हैं। अड़ी और चढ़ी नामकी

दो बहनें इस कुएँ से पानी भरती थीं इसलिए यह कुआँ "अड़ी-चड़ी" का कुआँ कहलाता है। "नवधन" नाम का और एक बहुत बड़ा कुआँ हैं। काफी गहरा है। उसके भीतर गोल-गोल सीढ़ियाँ बनी हैं। ऊपर से देखते ही सिर चकरा जाता है। अंदर उतरने की बात तो दूर ही रही।

पहाड़ी के एक ओर लगभग 1500 वर्ष पुरानी बौद्ध गुफाएँ हैं। इसके खंभों पर सुंदर नक्काशी है।

गिरनार तो बादलों से बातें करता हैं। इसके कुल पाँच शिखर हैं। सभी पर संगमरमर के सुंदर मंदिर हैं। यह भी शत्रुंजय की तरह मंदिरों की नगरी है। इनमें सबसे पुराना है बाईसवें जैन तीर्थंकर नैमिनाथजी का मंदिर हैं। 12 वीं शताब्दी में यह मंदिर बना था। यह सबसे बड़ा भी है।

गुजरात के वाघेला वंश के एक राजा थे वीरधवल। उनके मुख्य मंत्री का नाम था वस्तुपाल और वस्तुपाल का ही भाई तेजपाल मुख्य सेनापति था। इन दोनों भाइयों ने गुजरात में कई जैन मंदिर बनवायें हैं। ऐसे सुंदर मंदिरों का एक उदाहरण इस गिरनार पर्वत पर भी है। जैनों के उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लीनाथजी का मंदिर भी 12 वीं शताब्दी का है। अंबा माता का मंदिर भी बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है।

यही नहीं, पास की दातार पहाड़ी पर जयमल शाहपीर की दरगाह है। सुना है कि उनके आध्यात्मिक गुरु पीर पट्टा के कहने पर वे सिंध से जूनागढ़ आये थे।

□□

16

नरसिंह मेहता

अब तो मंदिरों की नगरी में काफी घूम लिया। नीचे उतर जाएँ? नरसिंह मेहता का मंदिर देखें या न देखें, उनके बारे में कुछ बातें सुनना बहुत जरूरी हैं। वह इसलिए कि गांधीजी का प्रिय भजन "वैष्णवजन तो तेने रे कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे", नरसिंह मेहता का रचा हुआ हैं। जिसने इतना सुंदर भजन रचा वह अवश्य ही असाधारण व्यक्ति होगा।

नरसिंह मेहता बचपन से ही 'भगत माणस' थे। दुनियादारी से मानों उन्हें कोई नाता नहीं था। वे पत्नी सहित अपने बड़े भाई-भाभी के साथ तलाजा में रहते थे। एक दिन काम करके शाम को घर लौटे और भाभी से पानी माँगा तो भाभी ने तानेबाजी शुरू कर दी। नरसिंह के दिल पर गहरी चोट लगी। उसे सौतेली माँ के कटुवचन सुनकर ध्रुव के वन में चले जाने की बात याद आई। ध्रुव ने वन में जाकर तपस्या की थी, ईश्वर के दर्शन पाये थे। नरसिंह भी घर छोड़कर वन के किसी वीरान शिवालय में बैठकर कड़ी तपस्या करने लगे। सात दिन तक न कुछ खाया न पीया। भगवान शिवजी तपश्चर्या से प्रसन्न हुए। उन्होंने नरसिंह से वरदान माँगने को कहा। नरसिंह बोले: "आपको जो प्रिय हो वही दीजिए।"

शिवजी उन्हें अपने साथ श्रीकृष्ण की कर्मभूमि द्वारिका ले गये। वहाँ श्रीकृष्ण की रासलीला का साक्षात्कार करवाया। फिर तो नरसिंह कुछ समय वहीं रह गये और काव्य रचना शुरू कर दी। जब वे तलाजा लौटे तो भाई-भाभी ने और गाँव के लोगों ने उनका सम्मान किया। नरसिंह ईश्वर भजन में ही अधिक समय बिताते थे।

भाई-भाभी पर बोझ न बनने के लिए वे अपने परिवार के साथ जूनागढ़ आ गये। जीवन-निर्वाह के लिए छोटा-मोटा काम कर लेते थे।

वे नियमित रूप से गिरनार पर्वत की तराई में दामोदर कुंड में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन स्नान करके लौट रहे थे, तब अस्पृश्य जाति के लोगों ने उनसे अपनी बस्ती में आकर कीर्तन करने की प्रार्थना की। नरसिंह वहाँ कीर्तन करने गये। रातभर कीर्तन होता रहा। हरिनाम का उत्सव हो गया। सुबह जब घर लौटे तो देखा कि जिस मोहल्ले में उनका घर था उसके सारे लोग उनका तिरस्कार करने लगे थे। नरसिंह ने उत्तर में कहा,—'मैं छोटे कर्म करने वाला नरसिंह हूँ, मुझे तो वैष्णव प्यारे हैं। हरिजन से जो दूरत्व रखेगा, उसका जन्म व्यर्थ हो जाएगा।" इस अर्थ का एक काव्य भी उन्होंने रचा है।

नरसिंह मेहता

यहाँ नरसिंह कहना यह चाहते हैं कि हरिभक्त किसी भी कौम, धर्म या जात का हो सकता है। भक्ति में भेदभाव को स्थान नहीं है। हरि की भक्ति करने वाले सभी हरिजन हैं। दलित कौम के लिए गांधीजी ने "हरिजन" शब्द को जो अपनाया और उसे व्यापक किया उसकी मूल प्रेरणा नरसिंह के इस शब्द के प्रयोग में हैं।

भारत का सौभाग्य है कि उसे ऐसे सत्पुरुष निरंतर मिलते रहे हैं।

□□

17

जूनागढ़ के आसपास

जूनागढ़ से दक्षिण में जाएंगे। लगभग 54 किलोमीटर की दूरी पर सासण-गीर जंगल हैं। यहीं वह अभयारण्य है जहाँ सिंह, चीतल इत्यादि बिना किसी डर के घूमते हैं। इसी जंगल के अंदर "तुलसीश्याम" नाम का गरम पानी का कुंड हैं। भगवान विष्णु के प्रतीक रूप एक बड़े श्यामरंगी पत्थर, जिसे शालीग्राम कहते हैं, का विवाह तुलसी के पौधे से किया गया था। इसीलिए यह स्थान तुलसीश्याम कहलाता है।

पास ही में भीम और कुंती का मंदिर हैं। एक कहानी ऐसी है कि पाँच पांडवों में जो भीम थे उन्होंने यहाँ अपनी माता कुंती की प्यास बुझाने के लिए हल का फाल मारकर धरती से पानी निकाला था। उन्हीं की स्मृति में यह मंदिर बनाया गया है।

अब हम समुद्र किनारे की ओर बढ़ रहे हैं। यह है चोरवाड़। बहुत ही सुंदर स्थान है। जूनागढ़ के नवाबों ने यहाँ ग्रीष्म ऋतु में रहने के लिए विशाल महल बनवाया था। अब वह होटल बन गया है। इस समुद्रतट पर नारियल के बहुत से वृक्ष हैं। एक नारियल पीकर भी देखें। वाह, बहुत मीठा पानी है।

पास ही में मांगरोल है। मांगरोल विख्यात हो गया है "शारदा मंदिर" नाम के एक विद्यालय के कारण। कराची (पाकिस्तान) से आये हुए एक शिक्षाविद् स्वर्गीय मनसुखराम भाई ने विद्यालय शुरू किया था। विद्यालय की धरती पर पैर रखते ही पता चल जाता है कि यहाँ की बात ही कुछ ओर है। बहुत ही स्वच्छ स्थान है। रास्तों पर कंकड़ बिछे हैं। चलने में कुछ तकलीफ होती है। पूछने पर पता चला कि

इस प्रदेश में सांप बहुत हैं। ऐसे कंकड़ पर सांप तेजी से चल नहीं सकता, इसलिए रास्ते पर कंकड बिछा दिये गये हैं।

इसकी गौशाला भी देखने लायक है। सफाई तो ऐसी है जैसी अस्पतालों में होती है। दरवाजों पर फूलों की मालाएँ लगी हैं। बीचोबीच सुंदर रंगोली की गई है। अगरबत्तियाँ जल रही हैं। अब वाद्यों का मधुर संगीत सुनाई देता है। ऐसा वातावरण तैयार करने के बाद ही गाय को दुहा जाता है। मनसुखराम भाई कहते थे कि स्वच्छता, सुगंध और संगीत के कारण गायों का मन शांत और प्रसन्न रहता है. वे अधिक दूध देती हैं। सच ही तो है। देखते-देखते कितनी बालटियाँ भर गई!

यहाँ, पास ही में दिव है। दिव, दमण और गोवा का जो संघीय क्षेत्र कहलाता है, उसमें से दमण हम दक्षिण गुजरात में देख चुके। दिव यहाँ सौराष्ट्र में है। इरान से आये हुए पारसी पहले इसी दिव शहर में आये थे। बाद में यह पुर्तगालियों के हाथ में आ गया था।

□□

18

सोमनाथ

समुद्र किनारे पर ही आगे बढ़ते हैं। यह है प्रभास पाटण, जहाँ सोमनाथ का विख्यात मंदिर है। इस मंदिर का सात बार विनाश हुआ, सातों बार पुनर्निर्माण हुआ। पूरे भारत में शिव के बारह मंदिर सबसे पवित्र या महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। सोमनाथ का मंदिर उन्हीं में से एक है।

कहा जाता है कि स्वयं सोम अर्थात् चंद्र ने यह मंदिर बनवाया था। चंद्र देवता की कहानी इस मंदिर से जुड़ने के कारण वह और भी पवित्र माना जाता है।

अरबों ने जब मैत्रकों की राजधानी वलभीपुर पर हमला किया था तब सोमनाथ का मंदिर भी तोड़ा था। उन दिनों इस प्रकार का इतना बड़ा मंदिर सारे देश में केवल यही था। उस समय नागभट्ट ने उसे फिर से खड़ा किया। महमूद गज़नवी ने भी मंदिर पर हमला किया था। पूरे सात दिन तक उसका सामना किया गया, लेकिन अंत में उसने मंदिर और मूर्ति, दोनों का खंडन किया और मंदिर का सारा सोना और जवाहरात ऊँटो पर लादकर ले गया। यह सन् 1026 की बात है। मंदिर का पुनः निर्माण हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने जब प्रभास पाटण पर कब्जा जमाया तब मंदिर और मूर्ति को ध्वंस कर डाला। फिर से मंदिर खड़ा हुआ। इस बार औरंगज़ेब के कहने पर उसको तोड़ा गया। इन्दौर की अहल्याबाई होलकर ने उन खड़हरों के पास नया मंदिर बनवाया। वर्तमान में जो मंदिर है उसे महाभेरु प्रसाद नाम दिया गया है। भारत स्वतंत्र होने के लगभग दस वर्ष बाद मंदिर की मूल योजना देखकर, उसी स्थान पर, जहाँ सबसे पहला मंदिर था, वहीं उसी प्रकार का मंदिर बनाया गया है।
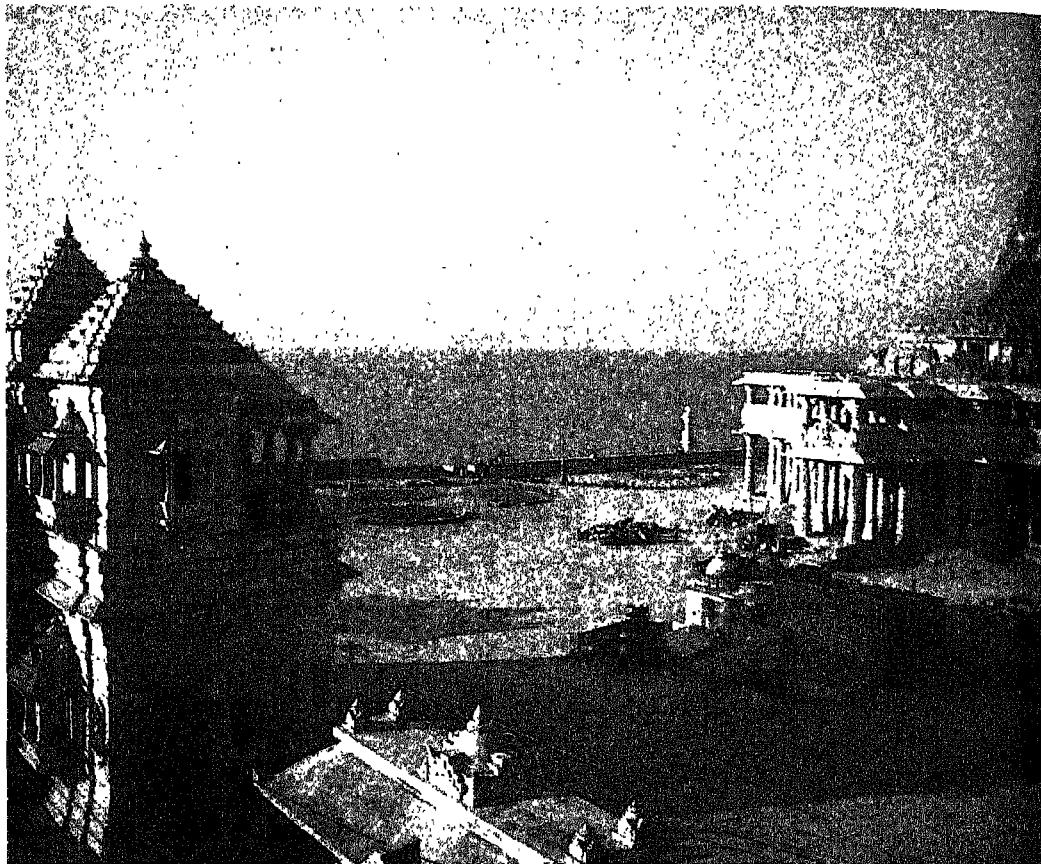
सोमनाथ का मंदिर

सोमनाथ के पास भालका तीर्थ है। यहाँ एक पीपल के पेड़ के नीचे श्रीकृष्ण विषादमय मुद्रा में बैठे थे। उस समय किसी शिकारी ने दूर से उनको हिरन समझकर तीर मारा और उनकी मृत्यु हुई। पास के त्रिवेणी घाट पर जहाँ उनके अंतिम संस्कार किये गये थे, ''देहोत्सर्ग'' नामका स्थान है। उसको भी प्रणाम कर लेते हैं। त्रिवेणी घाट पर तीन नदियाँ हैं हिरण्या, सरस्वती और कपिला। कितना आह्लादक संगम है यह। विद्वानों का कहना है कि यह घटना ईसा पूर्व 3185 की है। अर्थात् आज से पाँच हजार वर्ष से भी अधिक पुरानी।

इसके निकट एक सूर्यमंदिर भी है, लेकिन बिलकुल खंडहर की हालत में पड़ा है।

□□

19

पोरबंदर

जूनागढ़ जिले के उत्तर की ओर, समुद्र किनारे पर है पोरबंदर। इस बंदरगाह से प्राचीनकाल में अरबस्तान, अफ्रीका और इरान के साथ व्यापार होता था। आज भी, बंदरगाह होने के कारण वह एक औद्योगिक शहर बन गया है। यहाँ साबुन, सीमेन्ट और रसायन के कारखाने हैं। तेल और कपड़े की मिलें हैं। "बॅकवोटर" होने के कारण, समुद्री तूफानों से गोदी बच जाती है, यह इसकी विशेषता है। पोरबंदर मशहूर होने का कारण ये उद्योग नहीं है और न ही इसका "बॅकवोटर" है। इस शहर के साथ दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जुड़ी हुई हैं। एक है प्राचीन और दूसरी अर्वाचीन। श्रीकृष्ण के बचपन के परममित्र थे सुदामा। यह नगरी उन्हीं की है। इसीलिए पोरबंदर का दूसरा नाम सुदामापुरी है। यहाँ सुदामा का मंदिर भी है। यह हुई प्राचीन बात।

और अर्वाचीन बात है गांधीजी से संबंधित। पोरबंदर में सन् 1869 में गांधीजी का जन्म हुआ था। आज वह मकान कीर्ति मंदिर कहलाता है। जिस कमरे में गांधीजी का जन्म हुआ था उसे तो देखना ही है। इसमें गांधीजी की वस्तुएँ और तसवीरें रखी गईं-हैं। यहाँ एक पुस्तकालय है और इधर के विशाल कक्ष में कताई होती है। बालमंदिर और प्रार्थनाकक्ष भी है। गांधीजी के पिताजी पोरबंदर के राजा के दीवान् थे। इसलिए जन्म के बाद कुछ वर्ष तक बालक मोहन पोरबंदर में ही थे।

गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा का जन्म भी पोरबंदर में हुआ था। लोग दूर-दूर से इस स्थान के दर्शन के लिए आते हैं। वैसे तो सारी दुनिया बड़ी सुंदर है। लेकिन कुछ
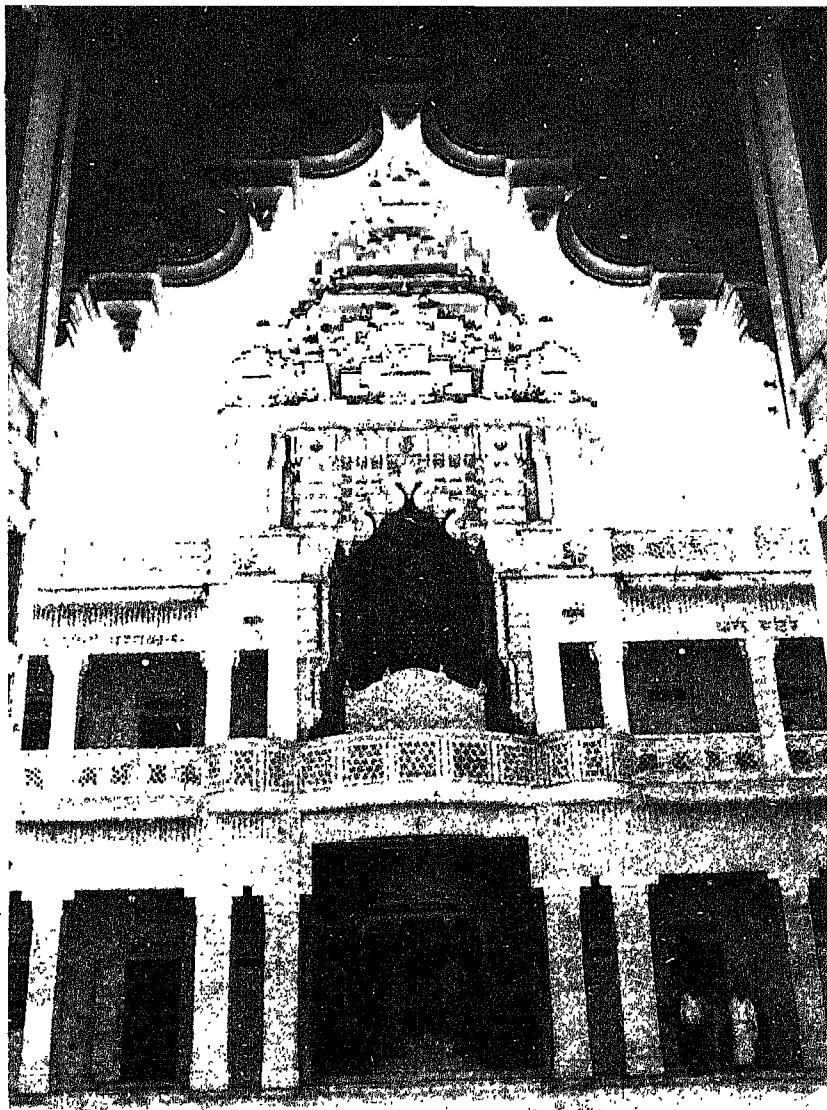
पोरबंदर कीर्ति मंदिर

स्थान ऐसे होते हैं जो किसी विशेष कारण से महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। अधिकतर ऐसा देखा गया है कि किसी महान व्यक्ति का जन्म, कर्म या मृत्यु किसी स्थान से जुड़े हों तो वह स्थान विख्यात हो जाता है। पोरबंदर गांधीजी का जन्म स्थान होने के कारण विख्यात हो गया, तो गुजरात की द्वारिका नगरी श्रीकृष्ण की नगरी बन गई, इसलिए विख्यात हो गई। समुद्र के किनारे ही अब हम पोरबंदर से द्वारका चलें। ''द्वारिका'' इसका प्राचीन नाम है।

□□

20

द्वारका

श्रीकृष्ण गोकुल-वृंदावन छोड़कर मथुरा गये, यह बात तो समझी जा सकती है, क्योंकि गोकुल-वृंदावन उनकी क्रीड़ाभूमि थी, जबकि मथुरा कर्मभूमि थी। लेकिन मथुरा भी क्यों छोड़ दिया? कहानी इस प्रकार है:

श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा गये तब उन्होंने दुष्ट राजा कंस का वध किया। कंस श्रीकृष्ण के मामा भी थे। दुष्ट को तो दूर करना ही चाहिए, इसीलिए श्रीकृष्ण ने कंस को स्वर्ग पहुँचा दिया था। मथुरा के खाली सिंहासन पर कंस के वृद्ध पिता को बिठाया। कंस का ससुर जरासंघ बड़ा शक्तिशाली राजा था। वह कंस की तरह दुष्ट भी था। कंस की मृत्यु की खबर मिलते ही वह आगबबूला हो गया। पूरे जोश के साथ उसने मथुरा पर आक्रमण किया। कई लोगों को मार डाला। खूनखराबा करके चला गया। इस प्रकार वह बार-बार मथुरा पर हमला करता था और लोगों का संहार करता था। ऐसी परिस्थिति से दुःखी होकर श्रीकृष्ण ने सोचा:

"मेरे कारण ही लोगों को इतनी परेशानी झेलनी पड़ती है, इतने सारे लोगों की जान जाती है। मैं ही मथुरा छोड़कर कहीं दूर चला जाता हूँ।"

बस, फिर वे मथुरा छोड़कर, उस रणभूमि को छोड़कर सौराष्ट्र की ओर चल पड़े। रणभूमि छोड़ दी इसलिए श्रीकृष्ण का नाम रणछोड़जी पड़ गया।

बहुत लंबा रास्ता काटकर वे भारत के पश्चिम किनारे पर आ पहुँचे। यहाँ गोमती नदी का सागर से संगम होता है। यह स्थान श्रीकृष्ण को अच्छा लगा। यहीं

पर उन्होंने द्वारिका नगरी बसाई। बहुत ही सुंदर नगरी थी वह। कई कवियों ने इसका वर्णन किया है। लेकिन यादवों के दिमाग पर सत्ता और धन का बुरा असर पड़ा। उनको शराब पीने की खराब आदत पड़ गई। उनका व्यवहार, रहन-सहन बदल गया। श्रीकृष्ण ने उन्हें बहुत समझाया, पर शराबी का दिमाग कहाँ काम करता है? उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। आपस में लड़कर उन्होंने अपने हाथों ही अपना विनाश कर डाला। गुजराती में एक कहावत है कि "विनाशकालेविपरीत बुद्धि" अर्थात् जब मनुष्य का विनाश होना हो तब उसकी बुद्धि विपरीत हो जाती है। यादवों के किस्से में यही हुआ।

इस संहार से दुःखी होकर श्रीकृष्ण कुछ बचे हुए यादवों को लेकर तीर्थयात्रा करने निकले। प्रभास पाटण के उस सोमनाथ मंदिर में गये, जो हम भी देख चुके हैं। यादवों ने यहाँ समुद्र में स्नान किया। फिर दिमाग तो बिगड़ ही गया था इसलिए खूब शराब पी। शराब के नशे में लड़ाई शुरू हो गई। बचे हुए यादव इस आपसी लड़ाई में खतम हो गये। इस प्रकार सारे यादव खत्म हो गये।

यह सब देखकर श्रीकृष्ण को बहुत दुःख हुआ। वे खिन्न मन से, एक पीपल के पेड़ के नीचे अपनी जीवनलीला समाप्त करने के लिए बैठ गये। उसी समय उन्हें शिकारी का तीर लगा और उनकी मृत्यु हुई।

कहते हैं कि श्रीकृष्ण की विदा के साथ ही सोने की द्वारिका नगरी समुद्र में समा गई। बाद में यह नगरी फिर से बसी, फिर समुद्र में समा गई, ऐसा पाँच बार हुआ। आज जो द्वारका है, वह छठी बार बसी हुई एक नगरी है। इस प्रदेश में की गई खुदाई से जो अवशेष मिले हैं उन्हीं से इस बात का प्रमाण मिलता है।

द्वारका हमारे देश के चार मुख्य तीर्थस्थानों में से एक है। ये तीन हैं– बद्री-केदार, रामेश्वर और जगन्नाथपुरी।

द्वारका में सबसे बड़ा मंदिर रणछोड़रायजी का है। यही द्वारकाधीश मंदिर कहलाता है। कोई 2500 वर्ष पुराना यह मंदिर है। इस पाँच मंजिलों वाले मंदिर का शिखर बहुत ही ऊँचा है और अत्यंत सुंदर है। भीतर जाने के लिए जो दरवाजा है उसे स्वर्ग द्वार कहते हैं। आइए, हम स्वर्ग द्वार से अंदर चलें। भीतर 60 खंभे हैं। और यह देखो, रणछोड़रायजी की मूर्ति। काले पत्थर से बनी है। मूर्ति के चार हाथ हैं। एक में शंख, दूसरे में चक्र, तीसरे में गदा और चौथे हाथ में कमल का फूल है
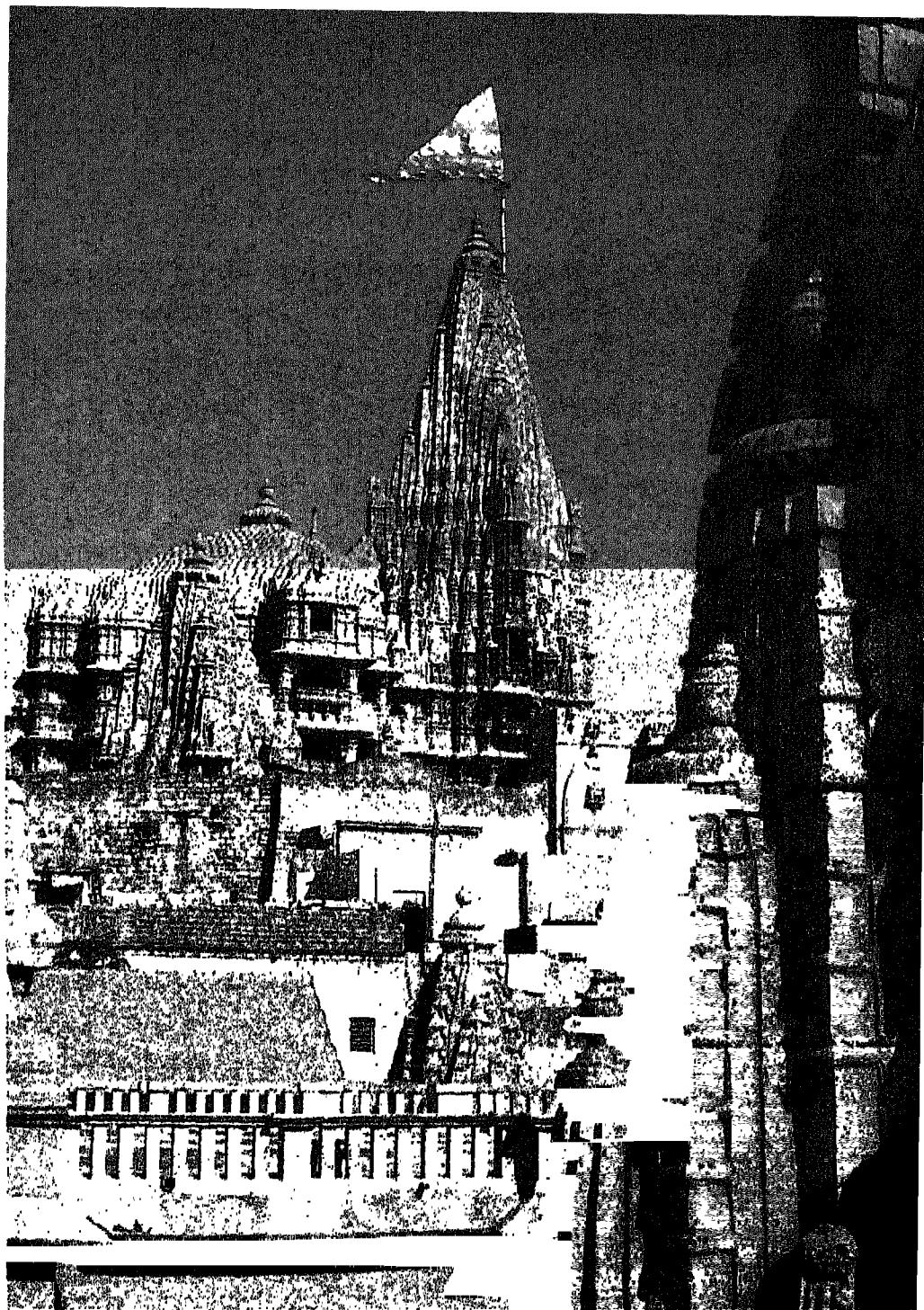
द्वारका में रणछोड़राय जी का मंदिर

मंदिर के इस भाग को निजमंदिर कहते हैं। घंटनाद करके हम मोक्ष द्वार से बाहर निकलेंगे। कितनी रोचक बात है। मंदिर में प्रवेश करना स्वर्ग में प्रवेश करने के बराबर माना गया है और मंदिर से बाहर निकलना मोक्ष प्राप्त करने के बराबर।

बाहर गोमती नदीं बह रही है। उस के किनारे बहुत सारे मंदिर हैं। जन्माष्टमी के दिन इस नगरी की रौनक देखनी चाहिए। बड़ी धूमधाम से कृष्णजन्म मनाया जाता है।

द्वारका में जगद्गुरु श्रीमद् शंकराचार्य की शारदापीठ है। उन्होंने भारत में चार मुख्य मठों की स्थापना की थी। इनमें से एक द्वारका में है। यहाँ हिंदू धर्म की शिक्षा दी जाती है। दूर-दूर से लोग संस्कृत पढ़ने आते हैं।

द्वारका से अब हम नाव में बैठकर शंखोद्वार द्वीप जाएँगे। यहाँ से लगभग 32 किलोमीटर की दूरी है। इस द्वीप में शंखासुर नामका एक असुर रहता था। श्रीकृष्ण ने उसका वध किया था। भगवान के हाथों से मृत्यु मिलना अर्थात् मोक्ष मिलना, इसलिए इस द्वीप को शंखोद्धार–शंख का उद्धार कहते हैं। यहाँ भी एक कृष्ण-मंदिर है।

द्वारका के पास नागेश्वर महादेव का मंदिर भारत के बारह बड़े ज्योतिर्लिंगों में गिना जाता है। गोपी तालाब भी पवित्र स्थान है।

इस प्रकार द्वारका ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। अब उद्योग के क्षेत्र में भी उसका विकास हुआ है। यहाँ सीमेन्ट का कारखाना है। कॉष्टिक सोडा और रसायन उत्पादन के कारखाने भी हैं। रासायनिक खाद भी बनाया जाता है।

21

जामनगर

सीमेन्ट और नमक के उद्योग जामनगर में भी हैं। जामनगर की विशेषता उसके विकासशील वर्तमान और गौरवपूर्ण अतीत के कारण है। वैसे शहर बड़ा सुंदर है। इसे सौराष्ट्र का पेरिस कहते हैं। इसकी सुंदरता का यश जामनगर के राजा जाम रणजीत सिंह जी को देना चाहिए। सन् 1540 में जाड़ेजा राजपूत जाम रावल कच्छ से सौराष्ट्र में आए और यह नगरी बसाई। उन दिनों सौराष्ट्र में छोटे-छोटे राज्य हुआ करते थे। ऐसे ही एक नवानगर नामके राज्य की राजधानी थी जामनगर। तब से लेकर स्वातंत्र्य प्राप्ति तक, लगभग चार सौ वर्ष तक, वह राजधानी बनी रही।

जैसा दूसरे कई शहरों में है उसी तरह जामनगर के भी चारों ओर किलाबंदी हैं। उसके कई दरवाज़े थे। सन् 1914 में जाम रणजीत सिंह जी के शासनकाल के दौरान शहर का चेहरा बदल गया। विशाल रास्ते बने, बड़े-बड़े चौराहे बने, प्रभावशाली इमारते बनीं। इन सबके कारण उसकी पेरिस से तुलना होती है।

जामनगर में पुरानी और नई परंपरा का सुंदर समन्वय है। सबसे पहले हम लखोटा महल और कोठा बैशन देखने चलते हैं। पुराने जामनगर शहर के मध्य में रणमल सरोवर है और उसके बीच में एक द्वीप है। इसी द्वीप पर लखोटा महल है। यह इमारत इतनी विशाल है कि वह किले का काम भी करती है। इसमें एक हज़ार सैनिक रह सकते हैं और किले की दीवार की आड़ से दुश्मनों के साथ लड़ सकते हैं इस महल में और एक खूबी थी। यहाँ एक पुराना कुआँ है और उसके बाहर की

जमीन में एक छेद बनाया गया है। उस छेद में फूक मारने से कुएँ से पानी बाहर आ जाता है। है न करामात! घड़े पर रस्सी बांधकर कुएँ से पानी खींचने का परिश्रम ही नहीं करना पड़ता। अब तो इसे संग्रहालय बना दिया गया है। इसमें 9 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक के अत्यंत सुंदर शिल्प एवं चित्र प्रदर्शित किये गये हैं। पास की बरडो पहाड़ी के घुमली, चोटीला, पिंडारा, गधावी जैसे गाँवों से प्राप्त पुरातत्व की दृष्टि से मूल्यवान अवशेष इस संग्रहालय में रखे गये हैं। नर्मदा नदी की घाटी से पाषाण युग की कुछ वस्तुएँ मिली हैं, वे भी यहीं हैं। सौराष्ट्र के मिट्टी के पात्र, मूल पांडुलिपियाँ, तांबे की तकतियाँ और शिलालेख भी हैं।

रणमल सरोवर के किनारे कोठा बैशन में जामनगर का शस्त्रसरंजाम रहता था। यह लखोटा जैसी ही प्राचीन इमारत है। इस शहर में मंदिर इतने अधिक है कि इसे "छोटा काशी" भी कहते हैं।

जामनगर के दर्शनीय स्थानों में एक है वहाँ का श्मशान। बात कुछ विचित्र लगती है। श्मशान में तो मुर्दे जलाये जाते हैं। उसके साथ भूतप्रेत की बातें जुड़ी होती हैं। बड़ी भयानक होगी वह जगह। लेकिन नहीं, जामनगर का श्मशान बहुत ही शांत और सुंदर स्थान है। एक मंदिर की तरह इसे देख लें।

श्मशान का नाम है माणेकभाई मुक्तिधाम। नाम भी कितना अच्छा है, 'मुक्तिधाम'। मौत से डरने की कोई जरूरत नहीं है। यहाँ तो संसार से मुक्ति मिलती है। हाँ, यदि हमने सदाचार से जीवन बिताया है तब तो जन्म-मृत्यु के चक्र से ही मुक्ति मिल जाएगी। हिंदुओं में मुर्दे को जलाने के बाद नहाने का रिवाज होता है और श्मशान में पानी का प्रबंध न होने के कारण लोग अपने-अपने घर जाकर नहाते हैं। लेकिन जामनगर के इस मुक्तिधाम में नहाने के लिए गरम और ठंडे पानी का प्रबंध है। अब आगे चले।

सूर्य की किरणों से त्वचा के और शरीर के कई रोग दूर होते हैं, यह तो हम जानते हैं। उन किरणों में विटामिन "डी" होता है। जामनगर में एक "सोलेरियम" बनाया गया है। यही पर सूर्य किरणों से चिकित्सा होती है। यहाँ का आयुर्वेद विश्वविद्यालय भी मशहूर है। आयुर्वेद अनुसंधान केन्द्र में औषधीय वनस्पतियों का बहुत बड़ा संग्रह है।

अब हमें कच्छ चलना है। लेकिन एक बार यह जामनगर के बारे में छपा हुआ परचा देख लें। कुछ छूट तो नहीं गया?

चांदी बाजार में जैन मंदिर हैं, सुंदर शिल्प से सजा हुआ खंभालिया द्वार है, जाम साहब का विभाविलास महल और प्रताप विलास महल है। इन महलों को देखने के लिए खास अनुमति लेनी पड़ती है। इतना समय तो अपने पास नहीं है, इसलिए सब कुछ देखने का लोभ त्यागते हैं और आगे चलते हैं। जाते-जाते यहाँ की छुरी, सुपारी काटने की "सूड़ी", कुंकस और सुरमा तो लेना ही है। जामनगर का बंधेज भी बड़ा मशहूर है, पर महंगा भी है इसलिए खरीदने की हिंमत नहीं पड़ती। बंधेज कच्छ में भी मिल जाएगा, वहीं देख लेंगे। तो अब चलें।

□□

22

कच्छ

हम कच्छ की ओर जा रहे हैं। दोनों तरफ सूखी ज़मीन है। इसमें खार का प्रमाण इतना अधिक है कि कुछ उग नहीं सकता। इसीलिए यह रेगिस्तान कहलाता है। कच्छ का अधिकतर भाग रेगिस्तान है। एक हिस्से में बड़ा रेगिस्तान है, दूसरे में छोटा। इसे गुजराती में ''कच्छनुं मोटुं रण'' तथा ''कच्छनुं नानुं रण'' कहते हैं।

कच्छ का छोटा रेगिस्तान ''जादुईनगरी'' है। सारा प्रदेश उजड़ा हुआ और वीरान है। अक्टुबर से जून महीने तक यहाँ इतनी धूप होती है, मानों आकाश से आग बरस रही हो। सारा वातावरण भठ्ठी की तरह तप जाता है। कोई चीज़ स्थिर दिखाई नहीं देती। आकार टेढ़े-मेढ़े और कभी-कभी तो हवा में तैरते हुए दिखाई देते हैं। धरती पर चारों ओर पानी-सा नज़र आता है। वास्तव में यह पानी नहीं होता, मृगजल होता है। अर्थात् पानी का केवल भ्रम होता है।

इस प्रदेश में जंगली गधे बहुत हैं। ये गधे राष्ट्र की संपत्ति हैं। तभी तो कच्छ का छोटा रेगिस्तान अभयारण्य घोषित किया गया है। ये गधे जब मृगजल से छाई हुई ज़मीन पर दौड़ते हैं तो लगता है कि समुद्र के झगमगाते पानी पर दौड़ रहे हों!

इस रेगिस्तान के बीच में कहीं-कहीं टीले हैं। इन्हें द्वीप या ''बेट'' कहते हैं। बारिश के दिनों में खारी ज़मीन पानी से लथपथ रहती है। ये टीलें पानी से ऊपर हैं। टीलों पर केवल बबूल के पेड़ दिखाई देते हैं। थोड़ी बहुत घास भी उग आती है। कुछ द्वीपों में खेती भी होती है।

कच्छ का जंगली गधा

जंगली गधे दिन में तो रेगिस्तान में घूमते रहते हैं रात के समय द्वीप पर आ जाते हैं। वे रेगिस्तान का खारवाला घास खाते हैं, इसलिए बहुत ही ताकतवर हैं। रेगिस्तान के ऊँट को भी देखिए। इनमें कितनी अधिक शक्ति है! ऊँट तो रेगिस्तान का जहाज कहलाता है। खारे घास के कारण कच्छ का पशुधन उत्तम है। है न कुछ नई दुनिया!

जहाँ बड़ा रेगिस्तान है, उसकी कहानी भी इतनी ही रोचक है। दूर-दूर तक कुछ भी नहीं दिखाई देता। लेकिन सर्दी की ऋतु में यह स्थान बिलकुल बदल जाता है। ऊपर से सफेद लेकिन जब उड़ते हैं तब केसरी-गुलाबी सुरखाब पक्षी कुछ महीनों के लिए यहाँ अपना घर बना लेते हैं। उनकी एक नई नगरी बस जाती है। उनके घोंसले बनते हैं, अंडे पकते हें, चूज़े निकलते हैं। सर्दी कम होते ही परीकथा की किसी जादुईनगरी की तरह सबकुछ गायब हो जाता है।

ये सुर्ख़ाब बहुत दूर के बर्फीले प्रदेश से आते हैं और उन्हें देखने के लिए दूर-दूर से लोग भारत आते हैं। वैसे उनकी नगरी तक पहुँचना आसान नहीं है। कई दिनों

तक ऊँट पर सफर करते रहिए, तब कहीं उनकी झलक दिखाई देगी। वे इंसानों की दुनिया से दूर ही रहना पसंद करते हैं।

कच्छ का प्रदेश एक ओर रेगिस्तान से तो दूसरी ओर समुद्र से घिरा हुआ है। बारिश के दिनों में जब रेगिस्तान की धरती गीली हो जाती है तब कच्छ समुद्र के बीच स्थित द्वीप जैसा लगता है। कछुए के आकार का द्वीप।

कंडला-मांडवी

समुद्र किनारे का कंडला बंदरगाह गुजरात का सबसे बड़ा बंदरगाह है। सन् 1930-31 में कच्छ के महाराजा खेंगारजी ने इसे विकसित करने का प्रयत्न किया था। आज यहाँ से काफी माल बाहर भेजा जाता है। मांडवी भी मध्यम कक्षा का बंदरगाह है। सुना है, इधर से तस्करी बहुत होती है। डर लगता है न? वैसे समुद्र किनारा काफी विशाल और सुंदर है।
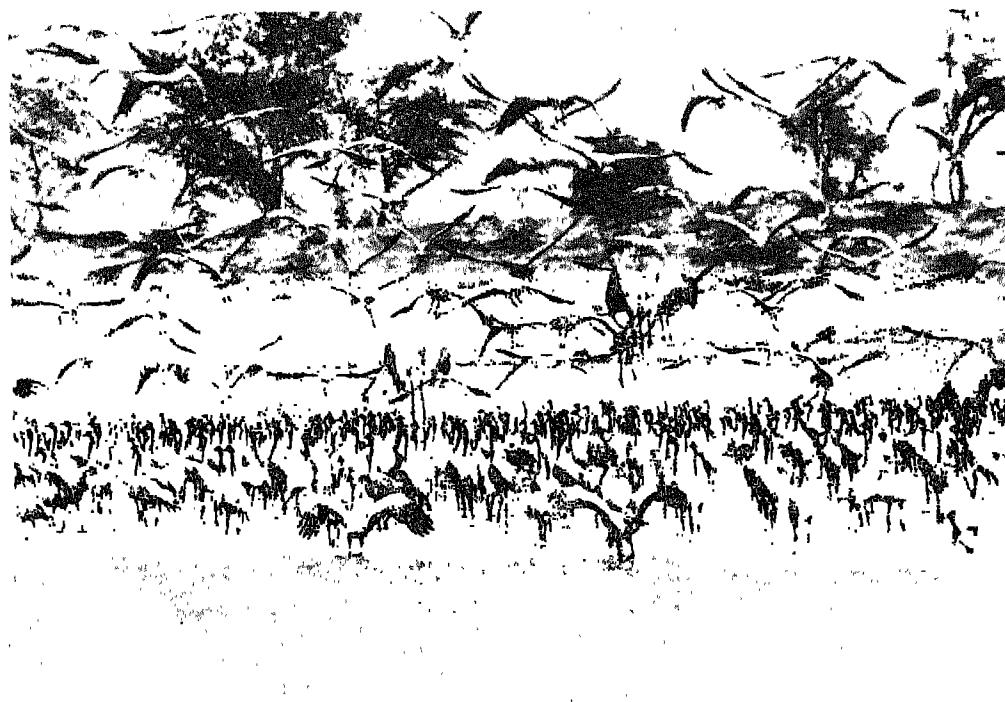
सुर्ख़ाब पक्षियों की नगरी
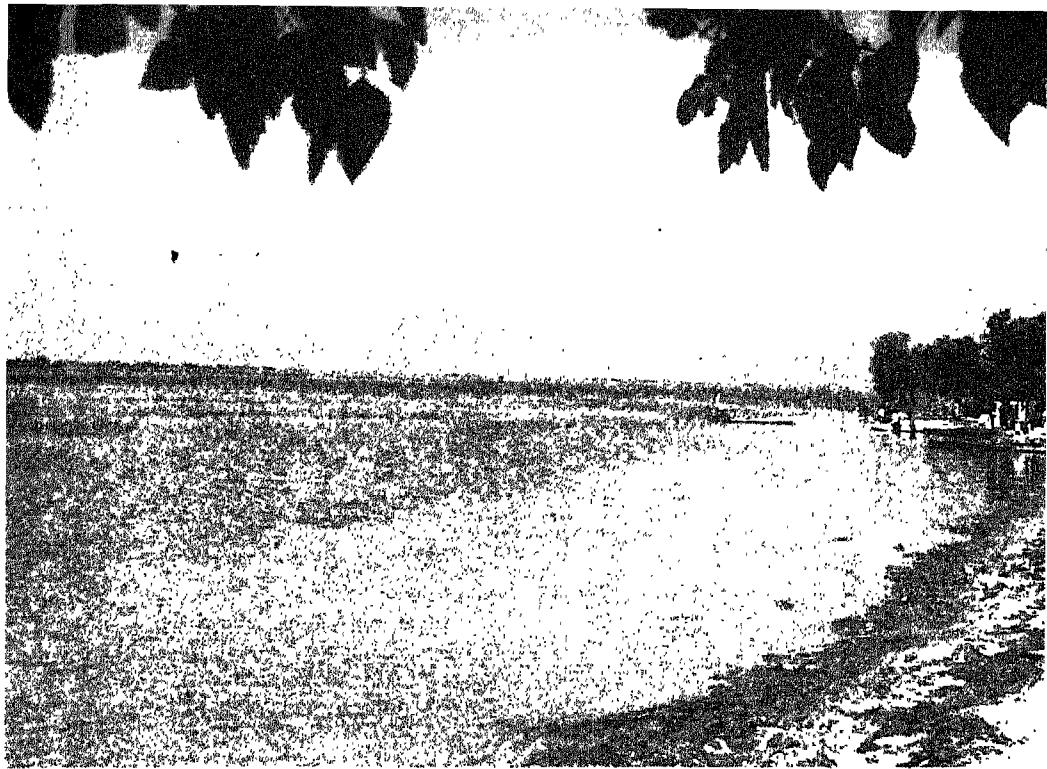
नल सरोवर

नारायण सरोवर

कच्छ के उत्तर में समुद्र तट के पास नारायण सरोवर है। यह सरोवर बड़ा पवित्र माना जाता है। भारत में कुल पाँच पवित्र सरोवर कहे गये हैं, उत्तर में कैलाश पर्वत का मानसरोवर, दक्षिण में पंपा सरोवर, पूर्व में भुवनेश्वर का बिंदु सरोवर, राजस्थान का पुष्करराज और पश्चिम में यह नारायण सरोवर तीर्थस्थान माना जाता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन यहाँ मेला लगता है। कच्छ, राजस्थान, सौराष्ट्र और गुजरात के काफी यात्री यहाँ एकत्रित होते हैं।

मेले और त्यौहार का ही ऐसा समय होता है जब हमें उस प्रदेश की ग्राम्य ज़नता अर्थात् मूल आत्मा को देखने का मौका मिलता है। यहाँ हिंदू और मुसलमान, दोनों धर्मों के काफी लोग हैं। उत्तर की सरहद पर पाकिस्तान है। उत्तरी कच्छ की बन्नी कौम मुसलमान है। उनका नृत्य-संगीत, उनके घर, बर्तन, उनके कपड़े, आभूषण, उनके कपड़ों पर कढ़ाई तो ज़रा देखिए। लोककला की इतनी समृद्धि देखकर आप दंग रह जाएँगे।

कच्छ का बंधेज भी इतना ही मशहूर है। गरम शालों पर बंधेज का काम

कच्छ का हस्तशिल्प

आजकल इतना लोकप्रिय हो गया है कि केवल हमारे देश में ही नहीं, विदेशों में भी महिलाएँ इन्हें गौरव के साथ ओढ़ती हैं।

भुज

कच्छ का मुख्य शहर भुज है। अन्य प्राचीन नगरों की तरह इसके भी चारों ओर किला बंदी है। भुज का संग्रहालय, आयना महल, प्राचीन महल देखने लायक हैं।

भुज का बाज़ार देखते हैं। छोटी-छोटी गलियाँ हैं। दोनों तरफ दुकानें। दिल्ली या बम्बई में जो वस्तुएँ बड़े-बड़े वातानुकूलित "स्टोर" में मिलती हैं, वे यहाँ रास्ते पर बिकती हैं। हम भी कुछ बन्नी-कढ़ाई की वस्तुएँ खरीद लेते हैं। सचमुच, बहुत ही सस्ता है। लोग भी कितने सरल और हसमुख हैं। इनकी भाषा गुजराती से अलग लगती है। हाँ, अलग ही है। कच्छ की एक ओर सिंध है और दूसरी ओर गुजरात, इसलिए भाषा में भी दोनों का मिश्रण है। इसे "कच्छी" कहते हैं। वैसे यह "बोली" है, इसकी अपनी लिपि नहीं है। कच्छी लिखनी हो तो गुजराती लिपि में लिखनी होती है।

भुज के पास ही वह अंजार शहर है जहाँ कई बार भूकंप हुए हैं और सारा शहर ध्वस्त हो चुका है। अंजार के पास जेसल-तोरल की समाधि है। जेसल-तोरल की कहानी बड़ी रोचक है।

□□

23

जेसल–तोरल

प्राचीन काल की बात है। गुजरात के इस कच्छ प्रदेश में रायघण नाम का एक राजा राज करता था, उसके सबसे बड़े पुत्र के बेटे का नाम जेसल था। वह बचपन से ही बड़ा निडर, साहसी और शरारती था। बड़ा होकर वह एक मशहूर लुटेरा बन गया, लोग उससे डरने लगे।

एक बार जेसल की भाभी ने उसे ताना मारते हुए कहा कि यहाँ की बस्ती को तुम इतना सता रहे हो, हिम्मत हो तो सोरठ के सांसतिया काठी के घर जाओ। उनकी पत्नी तोरल चांद का टुकड़ा है। उनकी घोड़ी का नाम भी तोरल है। ऐसी बढ़िया घोड़ी दुनिया में किसी के पास नहीं होगी और काठी की तलवार भी बरामदे में लटक रही होगी। सच में बहादुर हो तो इन तीनों को ले आओ।

जेसल ने जोश में आकर कहा कि देख लेना भाभी, इन तीनों को न ले आऊँ तो मेरा नाम जेसल नहीं।

एक रात जेसल सांसतिया काठी के घर जा पहुँचा। घना अंधेरा था। लगता था, जैसे आकाश से अंधकार बरस रहा हो। जेसल लाल लुंगी पहने और काला कंबल ओढ़े मानो अंधेरे में घुलमिल गया था। उसके एक हाथ में तलवार थी और दूसरे हाथ में दीवार में सेंध लगाने का औजार था।

मकान की पिछली दीवार में जेसल ने छेद करना शुरू किया। धीरे-धीरे दीवार टूटने लगी। छेद बड़ा होने लगा। घर के भीतर से भजन की आवाज आ रही थी। पर इस सबसे बेखबर जेसल अपने काम में जुटा रहा। जब छेद काफी बड़ा हो गया, तो वह उसमें से होकर भीतर चला गया।

वह घोड़े बांधने की जगह थी। एक फुर्तीली घोड़ी वहाँ खड़ी थी। उसकी आँखें अंगारों की तरह चमक रही थी। पराये आदमी की गंध पाकर वह ज़ोर से हिनहिनायी।

सांसतिया संत पुरुष था। दिन-रात भजन और प्रभु-भक्ति में लीन रहता था। इस समय भी कीर्तन चल रहा था। भजन समाप्त हुआ। घोड़ी फिर हिनहिनायी। सांसतिया ने अपने आदमी से कहा–भाई, जाकर पता लगाओ कि यह घोड़ी आज इतनी क्यों हिनहिना रही है? कहीं सांप-बिच्छू तो नहीं निकल आये?

यह सुनकर घोड़ी के खूंटे के पास जो घास बिछी थी, उसके नीचे जेसल छिप गया। उस आदमी ने आकर देखा, तो घोड़ी ने खूंटा ही उखाड़ दिया था। उसने एक पत्थर से वह खूंटा फिर से जमीन में गाड़ दिया और घोड़ी को बांधकर चला गया। इधर वह खूंटा जेसल की हथेली के आरपार निकल गया। उसे बेहद पीड़ा होने लगी। खून की धारा बह निकली पर जेसल के मुँह से आह तक नहीं निकली। वह चुपचाप पड़ा रहा।

भजन समाप्त होने पर आरती हुई। प्रसाद बांटा गया। सभी को प्रसाद देने के बाद थाल में एक आदमी के हिस्से का प्रसाद बच गया। यह देखकर सांसतिया ने कहा कि यहाँ एक आदमी और होना चाहिए। वह उसी के हिस्से का प्रसाद है। उसे ढूंढो।

ढूंढते-ढूंढते एक आदमी उस घोड़ी के पास पहुँच गया। वहाँ देखा तो घास खून से लथपथ थी। घास हटायी तो नीचे जेसल और उसकी हथेली के आरपार खूंटा। उसने खूंटा खींचकर बाहर निकाला। जेसल खड़ा हो गया। उस आदमी ने आवाज देकर सांसतिया और उसकी पत्नी तोरल को बुलाया। दोनों वहाँ आये। जेसल तो तोरल का रूप देखता ही रह गया। तभी सांसतिया ने उससे पूछा–आप कौन हैं?

जेसल बोला–राजपूत।

सांसतिया ने आगे पूछा–आपका नाम, स्थान?

जेसल ने जवाब दिया—स्थान कच्छ, नाम जेसल।

जेसल का नाम सुनकर सारे भक्तजन कांप उठे। पर सांसतिया ने शांत स्वर में फिर पूछा—क्यों आये हो?

जेसल बोला—चोरी करने।

हैरान होकर सांसतिया ने पूछा—किस चीज की?

उसने जवाब दिया—सांसतिया की पत्नी तोरल, उसकी घोड़ी और तलवार की।

सांसतिया ने जेसल के हाथ की ओर देखकर पूछा—यह क्या हुआ? जेसल ने बताया कि जब वह घास के नीचे छुपा था, तब लोहे का खूंटा उसकी हथेली के आरपार निकल गया था।

सांसतिया जेसल की हिम्मत और सहनशक्ति पर खुश हो गये। पर उन्हें दुःख हुआ कि इतना शक्तिशाली पुरूष गलत रास्ते पर चला गया है। उसे यदि सही रास्ते पर लाया जाये, तो उसमें उसका कल्याण होगा और दूसरों का भी। वे जानते थे कि उनकी पत्नी तोरल पतिव्रता नारी है। वह त्याग और ममता की देवी है। शायद तोरल जेसल को बदल सके, इस शैतान को मानव बना सके। उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा। तोरल समझ गयी। उसने आँखों से सहमति दे दी।

सांसत्तिया बोले की आज दूज की रात है, अतिथि खाली हाथ नहीं जा सकते। यह लो मेरी घोड़ी और तलवार। फिर तोरल से कहा कि सती तोरल, इनको संभालना और जब तुम दोनों का मन करे तब भजन गाने चले आना।

जेसल आश्चर्य से देखता रह गया। वह समझ नहीं पाया कि यह सच है या सपना है।

खैर, उसने तोरल को घोड़ी पर बैठने के लिए कहा। तोरल बोली कि बेचारी घोड़ी पर इतना बोझ क्यों डालते हो? आप बैठिए। मैं साथ-साथ दौडूंगी।

सुबह होते-होते घोड़ी पर सवार जेसल और साथ में दौड़ती हुई तोरल नवानगर की खाड़ी के किनारे पहुँचे। नाव तैयार खड़ी थी। तीनों नाव में बैठ गये। नाव चल पड़ी। जेसल गर्व से फूला नहीं समा रहा था, पर तोरल के शांत और पवित्र चेहरे को देखकर जेसल को अपने आप से घृणा होने लगी।

अचानक समुद्र में भयानक तूफान उठा। नाव डूबने-उतरने लगी। बीच समुद्र में उसे बचाने का कोई उपाय नहीं था। पलभर पहले का साफ आकाश काले बादलों से घिर गया।

जेसल का चेहरा पीला पड़ गया। उसे अपनी मौत का डर लगा। उसने देखा तो तोरल शांत बैठी थी। उसके चेहरे पर भय की रेखा तक नहीं थी। कायर जेसल रो उठा। बोला– तोरल देवी, मुझे बचाओ।

तोरल हंसकर बोली– बहादुर लुटेरा तूफान से डर रहा है?

जेसल सूखे पत्ते की तरह कांप रहा था। वह तोरल के पैरों को पकड़कर गिड़गिड़ाया– मुझे बचा लो तोरल देवी।

तोरल बोली–धर्म को याद करो, अपने पापों को याद करो। मैं तुम्हारी नाव को डूबने नहीं दूँगी। जल्दी करो। देखो, जैसे तुम्हें अपना जीवन प्रिय है, वैसे ही दूसरों को भी अपनी जिंदगी प्यारी होती है। तुमने कितनी जानें ली हैं? कितने पाप किये हैं? ईश्वर से माफी मांग लो।

जेसल बिलख कर बोला– मैंने पाप ही पाप किये हैं। कितने पाप गिनाऊँ मैंने लोगों के मुँह से पानी तक छीन लिया है। बारातें लूटी हैं। घोड़ी पर सवार दूल्हों को तलवार के एक झटके से मार डाला है। सिर पर जितने बाल होते हैं, उनसे भी अधिक पाप मैंने किये हैं। मुझे माफ कर दो, ईश्वर मुझे बचा लो। तोरल देवी, मुझे बचा लो।

धीरे-धीरे तूफान थम गया। आकाश स्वच्छ हो गया। नाव स्थिर हो गयी। मानो समुद्र देवता ने जेसल का प्रायश्चित्त मान लिया हो। जेसल मौत की भयानकता को पहचान गया। जीवन की मधुरता को जान गया। तोरल देवी ने उस शैतान को इंसान बना दिया। एक अच्छा इंसान।

जेसल-तोरल का नाम आज भी गुजरात के कोने-कोने में गूँजता है।

□□

24

वापसी

गुजरात के इस छोर से यदि आगे बढ़ने की कोशिश करेंगे तो हम पाकिस्तान में पहुँच जाएँगे और हमें बिना पासपोर्ट, बिना विज़ा के प्रवेश करने के आरोप में गिरफ्तार किया जाएगा।

इसलिए अब यहीं से "अबाउट टर्न" याने "पीछे मुड़"। जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से यदि लौटें तब तो हमें पूरे एक महीने की छुट्टी और लेनी पड़ेगी और उधर बम्बई में स्कूल खुल जाएँगे। तो क्या करें? अब गुजरात की तेज़ बसों को टा-टा कहकर रेल में सफर करेंगे। भुज से मीटरगेज की छोटी ट्रेन राजकोट पहुँचा देगी। वहाँ से मीटर गेज की और एक छोटी ट्रेन अहमदाबाद पहुँचा देगी और अहमदाबाद से ब्राडगेज की बड़ी ट्रेन बंबई पहुँचा देगी। अहमदाबाद में सन् 1864 में पहली बार रेल आई थी। आज तो ट्रेनें ऐसे दौड़ रही हैं मानों पृथ्वी की उत्पत्ति हुई तबसे उन्हें दौड़ने की आदत हो गई हो! हमें भी उसी रफ्तार से आगे बढ़ना होगा और स्कूल खुलने से पहले बंबई पहुँचना होगा।

रास्ते में गुजरात और महाराष्ट्र के "हाई-वे" दिखाई देंगे। उस पर दौड़ती हुई बाबुल-नीतु की जीप भी शायद दिखाई दे। यदि ऐसा हो तो उन्हें धन्यवाद देना नहीं भूलना। उन्हीं की प्रेरणा से तो हम गुजरात में घूम आए हैं।

□□